पेड़ की तरह बनो और सुख चुके पतों को गिरते रहने दो -रूमी

इस धोखे में मत रहना

आंखों से पत्थर पिंघलेगा
इस धोखे में मत रहना
बिना लड़े इंसाफ मिलेगा
इस धोखे में मत रहना।

भारत के जर्रे जर्रे में
अपना-अपना हिस्सा है
बुला बुलाकर कोई देगा
इस धोखे में मत रहना।

भाग्य और भगवान तो प्यारे
केवल एक छलावा है
ईश्वर ही कल्याण करेगा
इस धोखे में मत रहना।

कहा किसी ने तेरे हाथों में
धन दौलत की भी रेखा है
छप्पर फाड़कर धन बरसेगा
इस धोखे में मत रहना।

शिक्षित और संगठित होकर
खुद पर तुम विश्वास करो
और कोई संघर्ष करेगा
इस धोखे में मत रहना।

संविधान की रक्षा करना
हम सब की जिम्मेदारी है
कोई और बेड़ा पार करेगा
इस धोखे में मत रहना।

-मुनेश त्यागी

मुख्य संपादक
बलबीर लौंगोवाल
balbirlongowal1966@gmail.com
98153 17028

संपादक
गुरमीत अम्बाला
tarksheeleditor@gmail.com
94160 36203

संपादकी मंडल
अजायब जलालाना (94167 24331)
कृष्ण कायत (98961 05643)

विदेशी प्रतिनिद्धि
अवतार बाई कनेडा
प्रधान TRSC (+1-672-558-5757)
अछर सिंह खरलवीर कवैंटरी (इंगलैंड)
(+44-748-635-1185)
मा. भजन सिंह कनेडा, बलदेव रहिपा टोरांटो

पत्रिका शुल्क :-
वार्षिक : 150/- रू.
विदेश : वार्षिक : 40 यू.एस.डॉलर
रचनाएं, पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के लिए पता:
मुख्य कार्यालय
तर्कशील भवन, संघेडा बाईपास
तर्कशील चौंक, बरनाला-148101
01679-241466, 98769 53561
tarkshiloffice@gmail.com
पत्रिका को पढ़ने के लिए लॉग ऑन करें:
www.tarksheel.org
Tarksheel Mobile App :
Readwhere.com

राजेन्द्र भदौड़, प्रकाशक,मुद्रक,स्वामी की तरफ से तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) द्वारा अप्पू आर्ट प्रैस, शाहकोट (जलन्धर) से मुद्रित करके मुख्य कार्यालय तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.), बरनाला, (पंजाब) से तर्कशील सोसायटी पंजाब व हरियाणा के माध्यम से वितरण के लिए जारी किया।

तर्कशील पथ पत्रिका हेतु शुल्क
पंजाब नैशनल बैंक में
तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) के नाम से
खाता सं. 0044000100282234
IFSC: PUNB0004400 में जमा करा सकते है।
एंव पत्रिका भेजने के लिए एड्रेस व शुल्क की स्क्रीन शॉट/रसीद मोबाइल नम्बर
+91 98156 70725 पर वट्सएप कर दें।

इस अंक में

आनलाईन पत्रिका को पढ़ने के लिए :

www.tarksheel.org,
http://tarksheelblog.wordpress.com
सर्च करें: tarksheel :
www.archive.org
Readwhere.com

संपादकीय

क्या धार्मिक स्थलों पर सी.सी.टी.वी. कैमरे लगे देखकर कभी आपके मन में यह सवाल आया कि जिस 'दिव्य' शक्ति की यह सोचकर आप पूजा करते हैं, मन्नतें मांगते हैं कि वह भगवान, गॉड, खुदा आदि कुछ भी नाम दो आपको हर धोखाधड़ी, बुरी घटना, कुछ बुरा होने, घर में चोरी होने से बचाएगा, उसे अपनी निगरानी के लिए इन कैमरों की आवश्यकता क्यों पड़ती है? यह सोचना तर्कशीलता की तरफ पहला कदम है। यदि हम धार्मिक हैं, हमारा दृढ़ विश्वास है कि ईश्वर ही सब कुछ करता है तो हमें अपने जीवन में घटित किसी भी दुर्घटना के बारे में चिंता क्यों करनी चाहिए? जब सब कुछ उसकी मर्जी से हो रहा है, जैसा लिखा है, वही होगा तो फिर न्याय पाने के लिए 'सांसारिक' थाने/अदालतों की जरूरत क्यों? क्या ये पुलिस स्टेशन/अदालतें 'रब्बी' अदालत से ऊपर हैं? जो हमें तथाकथित सर्वोच्च शक्ति 'ईश्वर' द्वारा हमारे साथ किए गए बुरे काम के खिलाफ न्याय देता है? अगर ये सवाल हमारे मन में आने लगेंगे तो हमें उनके जवाब भी मिल जाएंगे. धार्मिक शब्द लिखकर पारिवारिक पत्र लिखने वाले भगत सिंह से, 'मैं नास्तिक क्यों हूं?' जैसी उच्चस्तरीय तार्किक लेखन की रचना करने वाले क्रांतिकारी भगत सिंह की यात्रा इन्हीं सवालों के जवाब तलाशने की यात्रा है। इसलिए संवाद बनाना होगा, अध्ययन करना होगा। बुकशेल्फ़ पर जाना होगा। किताबों में इतनी ताकत होती है कि वो बड़ी-बड़ी क्रांतियाँ कर देती हैं। इसलिए प्रतिगामी ताकतें किताबों से डरती हैं। इसीलिए पुस्तक मेले भी 'भावनाएँ भड़काने' लगे हैं। 'इंडियन एक्सप्रेस' के मुताबिक पुरातन पंथियों ने उत्तराखंड के पौरी गढ़वाल के केंद्रीय विश्वविद्यालय में 'किताब कौतुक' के नाम से लगने वाले बारहवें पुस्तक मेले को बंद करा दिया। उन्होंने खुलेआम पुस्तक मेले में किताबें जलाने की धमकी दी है. यह समाज के लिए खतरे की घंटी भी है और संदेश भी कि किताबों को देखकर अंधकार फैलाने वाली शक्तियां कांप उठती हैं। भारत सरकार द्वारा डाक द्वारा पुस्तकें मंगवाने पर जो अत्यधिक लागत बढ़ाई गई है वह भी किताबों के चलन को बाधित करती है, अब डाक से किताबें मंगवाने पर लगभग दुगना खर्च देना होगा। सामाजिक परिवर्तन के लिए हमें धर्मवादी सोच की बजाए विज्ञानवादी बनना होगा। संपादकीय की शुरुआत में उठाए गए सवाल का जवाब पिछले महीने प्रकाशित तीन समाचार शीर्षकों में भी मिलेगा: मंदिर (गांव ताजिया खेड़ा, सिरसा) से छतर चुराने वाली एक महिला सहित दो गिरफ्तार, धर्म के नाम पर एक धोखेबाज गिरफ्तार (फाजिल्का), एक ब्रिटिश सिख भाई और बहन को दान में धोखाधड़ी के लिए जेल (लंदन)। तथाकथित धर्म के नाम पर धोखाधड़ी, धार्मिक स्थलों से चोरी की इन घटनाओं में 'सांसारिक' पुलिस स्टेशनों द्वारा गिरफ्तारियां की गई हैं, अदालतों द्वारा सजाएं दी गई हैं। कोई दैवीय शक्ति न्याय करने नहीं आई। लेकिन यह भी ध्यान रखना चाहिए कि न्याय के लिए पुलिस थाने/अदालतें ही जाना पड़ता हैं, वैसे यह भी लोक विरोधी व्यवस्था द्वारा खड़ी की संस्थाएं ही हैं। आइये इस ऐतिहासिक माह में 23 मार्च के शहीदों- शहीद भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव के विचारों को याद कर अध्ययन के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की राह पर चलें। किसी भी 'दिव्य' शक्ति ने आपके जीवन नहीं बदलना। इसे बदलने के लिए आपको खुद आगे आना होगा।

-बलबीर लौंगोवाल

टोनाटोटका और झाड़फूंक

–संपादक : राकेश नाथ

मैं डाक्टर हूं। मेरे पास सभी प्रकार के रोगी आते हैं। उन की जांच करता हूं। रोग का पता लगाता हूं और दवा देता हूं। कुछ रोग स्वयं साध्य होते हैं। जो साध्य होते हैं, वे अपने-आप अपनी अवधि के बाद ठीक हो जाते हैं। कुछ बहुत पुराने रोगी होते हैं तथा उन की चिकित्सा में काफी कठिनाई होती है। समय और पैसा, दोनों बरबाद होते हैं।

टोनाटोटका और झाड़फूंक को कब तक हम अपनी जिंदगी से लिपटाए रहेंगे? क्या इन की कोई वैज्ञानिक प्रामाणिकता है?

ऐसे रोगी अधिकांशत : गांवों के निवासी और शहर के निम्न वर्गों के होते हैं। स्पष्ट है कि उनमें शिक्षा का प्रसार न होने तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की उन्नति से भिज्ञता न होने के कारण, ऐसी भयावह परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है।

रोगों के विषय में तथ्य एकत्रित करने पर पता चलता है कि वे अधिकांशत: असाध्य रोगों औषधि से अधिक टोटका, पूजा और व्रत में विश्वास करते हैं।

कई पुराने रोगी रोग मुक्ति के लिए यह व्रत रखते हैं। 'विधानानुसार' पूजा कर के अपने स्वास्थ्य लाभ की कामना करते हैं। उन का रोग यदि स्वयं साध्य नहीं हुआ तो बढ़ता जाता है और फिर 'क्रानिक' यानी पुराना हो जाता है।

स्वयं साध्य रोग

स्वयं साध्य रोग, शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता के कारण अपनेआप ठीक हो जाते हैं। दुआ और दवा, दोनों में से किसी की आवश्यकता नहीं पड़ती।

गांवों और पिछड़े वर्गों की जनता आज भी अंधकार में है। ये लोग शरीर की प्रकृति प्रदत्त शक्तियों से अनभिज्ञ होते हैं। इस प्रकार के स्वाभाविक (प्राकृतिक) स्वास्थ्य लाभ को वे 'माता' और 'बाबा' का करिश्मा मानते हैं। आज भी ऐसे भक्तों की संख्या बहुत बड़ी है।

आजकल कुछ ढोंगी लोग दूसरों की कमजोरी का लाभ उठा कर प्रवचन, पूजा और दक्षिणाप्रसाद के नाम पर अपना उदर पोषण करते हैं। जब कोई रोग स्वयं साध्य नहीं होता तो बिना उपचार के उस का निवारण असंभव होता है। वह क्रमश: बढ़ता जाता है। साधारण तथा अल्प समय और व्यय में साध्य व्याधि, कष्टसाध्य ओर महंगी हो जाती है। कई बार जीवन से भी हाथ धोना पड़ता है।

ऐसी स्थिति में भी 'माता' और 'बाबा' हार नहीं मानते। ढोंगी विशेष पूजा और अनुष्ठान के नाम पर रोगी की पाई-पाई चूस लेते हैं और बाद में कह देते हैं, ''यह डाक्टरी रोग है। इस की डाक्टर से जांच करा लो। दवा से ही लाभ होगा। ऐसा देवी अथवा देवता का आदेश है।''

घर वाले देवी की आज्ञा शिरोधार्य कर अपने रोगी को शहर ले जाने की तैयारी करते हैं। वे गरीब पहले ही लुट चुके होते हैं। उन के पास शहर जाने का किराया, डॉक्टर की फीस और दवा के दाम चुकाने के लिए पैसे नहीं होते। फलत: वे कर्ज लेते हैं, जेवर गिरवी रखते हैं या खेत बेच देते हैं। इस प्रकार वे ढोंगी पुजारियों के हथकंडों के शिकार होते हैं।

महिलाएं अंधविश्वास की शिकार

शहरी जनता में भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं। ज्ञानी लोग भी ऐसे चक्करों में फंस जाते हैं। ऐसे कुछ उदाहरण मुझे मिले हैं। एक केस था एक गुजराती महिला का। उस के पति का यह दूसरा विवाह था। पूर्व पत्नी से एक लड़की थी। विवाह के आठ-दस वर्ष बाद भी उन्हें कोई बच्चा नहीं हुआ। वैसे वह इस अवधि में तीन बार गर्भवती हो चुकी थी। पर हर बार तीसरे-चौथे मास में गर्भपात हो जाता था।

कई बार उस ने सोचा कि किसी डॉक्टर से सलाह ले। इसी बीच उस की एक पड़ोसिन बुढ़िया ने एक 'माता' के पास जा कर अनुष्ठान करने का सुझाव दिया। बुढ़िया बोली, ''बेटी! ये रोग डॉक्टरों के बस के नहीं होते। इन में भीतरबाहर की बला रहती है। हो सकता है तेरी जेठी की आत्मा विचर रही हो और बाधा पहुंचाती हो। 'माता' के मठ में जा कर देख, कितनी ही ऐसी औरतें पूजा और अनुष्ठान के प्रताप से चार-चार बच्चों की मां हो गई हैं।''

और वह एक दिन नगर की एक गंदी बस्ती में बने 'माता' के नाम से विख्यात एक मठ में जाती है। वहां बड़ी धूमधाम से पूजा होती है। अनपढ़ देहाती और निम्न वर्ग की स्त्रियों की भीड़ लगी रहती है। पढ़ी-लिखी और तथाकथित आधुनिक औरतों की भी वहां कमी नहीं रहती। अतः पढ़ी-लिखी महिलाओं को वहां देख कर आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

श्रद्धा क्यों ?

'माताजी' अपने बाल बिखरा कर हवा में घुमाती हुई कुछ ऐसा बीभत्स रूप दरसाती है कि सब की आंखें उन के बालों में उलझ जाती हैं। तभी मौका देख कर वह चुटकी में राख का चूर्ण ले लेती है और हाथ ऊपर उठा कर जोर से उसे सामने रखे अग्निकुंड में झोंक देती है। अग्नि की प्रचंड ज्वाला प्रकट हो कर सब को चकाचौंध कर देती है। सब के मस्तक श्रद्धा और सम्मान में झुक जाते हैं। तभी लोबान, गुग्गल और चंदन के चूर्ण को डाल कर वातावरण में सुखद सुगंध पैदा कर दी जाती है।

दूसरी ओर दीवार में सात छिद्र बने हैं। उन में घी के दीपक जल रहे हैं। ऊपर नीले रंग का मद्धम विद्युत प्रकाश फैला है। कुल मिला कर वातावरण, गंदी बस्ती में होने के बावजूद आनंददायक और सुखद लगता है। कितना मनोवैज्ञानिक तरीका है यह सम्मोहन का!

फिर समस्याएं और व्याधियां सुनी जाती हैं। इस के पहले 'चढ़ोत्री' होती है और आसन के पास फलफूल, नारियल, मिठाई, गुड़, बताशे और रुपयों का ढेर लग जाता है।

व्यक्तिगत व्याधियां

व्यक्तिगत व्याधियों का निदान मंगलवार को होता है। पूजा और विशेष बैठक मंगलवार को होती है। उस दिन सर्वसाधारण का प्रवेश वर्जित रहता है। केवल अनुष्ठान करने वाले परिवार के सदस्यों, विशेष आमंत्रित व्यक्तियों तथा 'चमचों' के अतिरिक्त ओर कोई नहीं रहता। मंगल की पूजा की निश्चित फीस होती है-सवा पांच सेर बढ़िया चावल, पीले रंग के फूल, हलदी की पांच गांठें, पीले रंग की धातु (पीतल या सोना), पीले रंग की साड़ी और 101 रुपए नकद।

इस पर यदि काम बन गया, अर्थात व्याधि स्वयं साध्य थी, तो फिर एक हजार एक अथवा श्रद्धा और शक्ति के अनुसार अलग से भंडारा। और अगर काम नहीं बना तो ओर बड़ी पूजा और अनुष्ठान।

अनेक बार लुट कर भी जब उस महिला का गर्भ नहीं रुका तो वह एक नर्स से मिली। नर्स मुझ से परिचित थी। वह उसे मेरे पास लाई। रोगी की पूर्ण परीक्षा कर. और आपबीती सुन मैंने उसे समझाया कि इस में किसी भूतप्रेत या वाधा की बात नहीं है। उसे बताया कि उस के पति के रक्त तथा वीर्य की जांच करने पर सब ठीक हो जाएगा।

जांच करने पर पता चला कि पति के रक्त में 'सिफलिस' के कीटाणु थे तथा शुक्राणु भी अनावश्यक रूप से कमजोर थे और यही गर्भपात का कारण है। अतः मैंने दोनों को पेनसिलीन की सुइयों का एक कोर्स दिया तथा पति के शुक्राणु को शक्तिशाली बनाने के लिए कुछ औषधियों के नाम लिख दिए। इस बीच महिला और उस के पति से मेरी घनिष्ठता काफी बढ़ गई थी। अक्सर वे मेरे पास आते रहते हैं।

चिकित्सा के तीन मास बाद वह स्त्री गर्भवती हुई। मैंने उसे प्रति माह परीक्षण कराते रहने का परामर्श और कुछ आवश्यक निर्देश दिए। फलतः समय पूरा होने पर उस ने एक सुंदर और स्वस्थ बच्चे को जन्म दिया। अब उस के तीन बच्चे हैं। तीनों स्वस्थ हैं। महिला भी प्रसन्न है।

दूसरी बार मेरा पाला पड़ा 'बाबा' से। मैं उन्माद (सीजोफ्रेनिया) का एक रोगी देखने गया।

दरवाजे पर सुगंधित धुएं की खुशबू फैल रही थी। अंदर रोगी की चारपाई के चारों ओर पुरुषों और महिलाओं की भीड़ लगी थी।

रोगी सोलह-सतरह वर्ष का युवक था। कभी वह चुप हो जाता, कभी उन्माद के कारण अनावश्यक प्रलाप करता और गालियां बकता। अपनी मां का नाम ले कर पुकारता और कहता-''मैं अली अकबर हूं, सिकंदर हूं। मुझ में सौ आदमियों का, बल है। मैं सब का खून पी जाऊंगा। तुम सब लोग चुप क्यों हो? बोलते क्यों नहीं?... हां! सब डरपोक हैं. अली अकबर से डरते हैं। यस आई एम अकबर दि ग्रेट, किंग आफ इंडिया। आई एम एलेक्जेंडर दि ग्रेट।''

इसी बीच उसे किसी विशेष पदार्थ की धूनी दी गई और वह चुप हो गया। धूनी देने वाला व्यक्ति कुछ मंत्र बुदबुदा रहा था. चालीस-पैंतालीस वर्ष के उस कालेतगड़े आदमी का हुलिया भी कुछ अजीब था। सिर पर बड़े-बड़े

अस्तव्यस्त बाल, कमर में लाल अंगोछा, माथे पर लंबा त्रिपुंड, दोनों भुजाओं पर रुद्राक्ष की मालाएं, गले में दोतीन मोटेमोटे ताबीज और कमर में एक मोटा रस्सा। बंधा था।

पूछने पर पता चला कि यह 'बाबा' हैं। इन का कहना है कि लड़के ने किसी मजार पर अनजाने में पेशाब कर दिया है। इसी से इसे दौरे पड़ने लगे हैं। लगातार पांच दिन तक झाड़ने से ठीक हो जाएगा। आज दूसरा दिन था।

मैं चुपचाप एक किनारे दर्शक बना खड़ा रहा। करीब 15 मिनट बाद बाबा की पूजा समाप्त हुई, भेंट स्वरूप उन्हें एक चूजा, एक बोतल देसी शराब, तीन किलो चावल और 101 रुपए नकद दिए गए। इसी बीच किसी ने बता दिया कि डॉक्टर साहब आ गए हैं। सब की आंखें मेरी ओर घूम गई, मैं रोगी की खाट के पास रखी कुरसी पर बैठ चुका था।

अनुष्ठान का महत्त्व क्यों ?

'बाबा' ने मुझे क्रोध भरी लाल-लाल आंखों से घूरा और गुस्से से गुर्राए, ''यहां डाक्टर का क्या काम है? यह भूतबाधा है. हां, तो ठीक है, मैं जाता हूं। तुम लोगों ने मेरा अपमान किया है।''

बाबा के बदले तेवर देख कर कुछ श्रद्धालु लोग उन की मिन्नत करने लगे। मुझे यह सब अच्छा नहीं लगा। अत: मैंने उस व्यक्ति से, जो मुझे बुला कर लाया था कहा, ''ठीक है, पहले इस बाबा को पूजा करने दो। जब लड़का ठीक न हो, तब मुझे बताना।''

लोगों ने बहुत समझाया पर मैं नहीं माना और अपना बैग उठा कर चला आया।

फिर बाबा का अनुष्ठान तीन दिन ओर चला। पांच बैठकों, खूब दानदक्षिणा के बाद भी स्थिति वैसी ही रही। फिर कुछ ज्योतिषी बुलाए गए। उन्होंने बच्चे की जन्मकुंडली देखी और दैवी प्रकोप की बात कही। विशेष गणना कर के बताया कि सात दिन में अपने-आप ठीक हो जाएगा। बशर्ते कि किसी सुपात्र द्वारा सवा लक्ष पाठ और कन्याभोज कराया जाए। परंतु साथ ही उन्होंने डॉक्टर की सलाह और चिकित्सा का भी परामर्श दिया।

पांच दिन बाद लड़के का पिता मुझे बुलाने स्वयं आया। उस का चेहरा उतरा हुआ तथा नेत्र सजल थे। वह सिसकते हुए सारी बातों का ब्यौरा दे कर कुछ देर रुका और फिर बोला, ''डॉक्टर साहब, मेरे यही एक संतान है। पूजापाठ और झाड़फूंक के चक्कर में सैकड़ों रुपए खर्च कर चुका हूं। पर हालत में कोई सुधार नहीं हुआ। अब तो यह सारी रात जागता रहता है। कभी चुप रहता है, तो कभी उलटी-सीधी बातें करता है। इस का खानापीना भी प्राय: बंद है। हम लोग भी रात-दिन सो नहीं पाते। चिंता के कारण उस की मां का स्वास्थ्य भी गिरने लगा है। अब आप ही का भरोसा है।''

मैंने उसे धैर्य रखने की सलाह दी और उस के साथ पुन: रोगी के पास गया। सब कुछ जांच करा लेने के बाद मैं ने निश्चित किया कि उसे गंभीर मानसिक आघात पहुंचा है जिसके कारण उन्माद (सीजोफ्रेनिया) के लक्षण उत्पन्न हो गए हैं। बात साफ थी। लड़का मैट्रिक की परीक्षा में तीसरी बार फेल हुआ था।

उपेक्षा से उन्माद कैसे ?

चिकित्सा प्रारंभ की गई। उस का दिमाग निष्क्रिय बना रहता तथा रात में अच्छी तरह नींद आती। साथ ही, 'फलों का रस और विटामिनयुक्त औषधियों से शारीरिक क्षीणता भी क्रमश: दूर होने लगी। अब वह दिन भर चुपचाप पड़ा रहता था। प्रलाप में व्यय होने वाली शक्ति का संचय होने लगा। फलस्वरूप पंदरहबीस दिन में उस का मानसिक तनाव कम हो गया।

तब मैंने उसे बताया कि अब आगे पढ़ाई नहीं करनी होगी। यह भी आश्वासन दिया कि उस की इच्छानुसार जनरल स्टोर भी शीघ्र खोल दिया जाएगा और इस प्रकार जब उसे वांछित वस्तु की प्राप्ति का विश्वास हो गया तो वह ठीक हो गया। मस्तिष्क का तनाव समाप्त हो गया। आजकल वह अपना स्टोर चला रहा है और पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्न है।

तीसरा मामला ओर भी दिलचस्प रहा। मेरे पड़ोस में एक विवाहोत्सव में बहुत से मेहमान आए। शहर की भीड़भाड़ में एक ग्रामीण महिला आ फंसी। उस की आयु लगभग चालीस-अड़तालीस वर्ष होगी। शरीर, चेहरे और वस्त्रों से ठेठ देहातीपन झलक रहा था। घर के आंगन में मंडप लगा था। सारी स्त्रियां, विशेष रूप से नवयुवतियां एवं प्रौढ़ाएं, वर का कंगन पिरोने का कार्य संचालित कर रही थीं। उसी रात पैसेंजर गाड़ी से बारात जाने वाली थी।

दूसरी ओर उक्त ग्रामीण महिला उपेक्षित सी अपने बिस्तर पर लेटी थी।

किसी का भी ध्यान उस की ओर नहीं गया। सभी अपनी मस्ती में मस्त थीं। कार्य का उल्लास और व्यग्रता सभी के चेहरे पर व्याप्त थी। ऐसे अवसरों पर सब मेहमानों के प्रति व्यक्तिगत ध्यान देना संभव भी नहीं होता। बस, उस महिला के मस्तिष्क में एक प्रकार का तनाव उत्पन्न हुआ और उस में अपने पूर्वपरिचित देहाती तरीके से सब का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने तथा अपनी मुख्यता दिखाने की लालसा जागी।

सहसा वह बिस्तर से उठ कर जोर से चीखी और अपने हाथ से अपने बालों को अस्त-व्यस्त कर के कुछ ऐसा दृश्य उपस्थित किया कि सब का ध्यान अनायास उस पर केंद्रित हो गया। प्रसन्नता और उल्लास पर आशंका और घबराहट हावी हो गई। कंगन पिरोते हाथ जहां के तहां रुक गए, जो खाली थीं, वे शीघ्र उस के चारों ओर एकत्र हो गई. तभी एक व्यक्ति घबराया हुआ आया और मुझे बुला ले गया।

मैंने देखा कि उस औरत को घेर कर अधेड़ स्त्रियां बड़ी श्रद्धा से बैठी हैं। देहाती सा दिखने वाला एक अधेड़ आदमी, जो शायद ओझा था, नींबू काट कर निचोड़ते हुए कुछ अस्पष्ट सा मंत्र पढ़ रहा था। तभी उस ने अग्नि में घी डाला और पद्मासन लगा कर विशेष मुद्रा में बैठ गया।

वह महिला चुप थी और सिर नीचा कर के लटों में मुंह छिपाए बैठी थी। शायद मुझे देख कर वह आवेश में आ गई। हाथ-पैर पटक कर सिर के अस्तव्यस्त बालों को चारों ओर हवा में लहराते हुए उस ने अपने शरीर को अनेक झटके दिए और नृत्य की सी मुद्रा में जोर से बोली-''इस आदमी को (इशारा मेरी ओर था) सामने से अलग करो। वरना मैं इस का नाश कर दूंगी।''

मानसिक कमजोरी

कुछ देर रुकने के बाद मैंने रोगी का निरीक्षण करना चाहा। उस औरत ने लपक कर मेरा स्टेथस्कोप छीन लिया और उसे एक ओर फेंक दिया। फिर वह मेरे बैग की ओर लपकी, जिसे वहां खड़े एक व्यक्ति ने उठा कर अन्यत्र सुरक्षित स्थान पर रख दिया। वहां एकत्र नवयुवतियां विशेष रूप से चिंतित हो रही थीं। विवाह का सारा कार्यक्रम रुका था।

मैंने कुछ युवकों को बुला कर उस औरत को अच्छी तरह जकड़ लेने के लिए कहा तथा नवयुवतियों को अपना कार्यक्रम प्रारंभ करने का आदेश दिया। अब अपने आप को असहाय पा कर वह औरत चुप हो गई। मैं दवा की सुई लगा दी। पंद्रह-बीस मिनट में वह निढाल हो कर लेट गई और गहरी नींद में सो गई।

दूसरे दिन पता चला कि विवाह के सब कार्य ठीक समय पर संपन्न हो गए थे और किसी प्रकार की अड़चन नहीं पड़ी थी। सुबह वह औरत सो कर उठने पर पूर्ण शांत एवं प्रसन्न थी। रात की घटना के बारे में उसे कुछ याद नहीं था। याद भी कैसे रहता? उस की तो संपूर्ण गतिविधियां उस अचेतन मस्तिष्क द्वारा संचालित थी, जो उपेक्षा और तिरस्कार की कल्पित भावना से उत्तेजित हो कर उस पर हावी हो गया था। वह स्त्री उस गांव की रहने वाली थी जहां इस प्रकार के व्यवहार को श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

व्यापक समस्या

गांव ही क्यों, शहरों में भी आज विशेषकर स्त्रियों में, इस प्रकार की मानसिक कमजोरी होती है तथा वे इस प्रकार के भूत-प्रेत को मान्यता देते हैं। सुबह जब उसे यह ज्ञात हुआ कि इस भीड़ में उस के प्रति सहानुभूति किसी को नहीं है तथा कोई कल की घटना से प्रभावित नहीं है तो वह चुप हो गई। उस का अचेतन मन शांत हो गया और वह रात की घटना को कुछ भूल गई।

भारत ही नहीं, यूरोप के भी प्राचीन इतिहास में 'विच डाक्टरों' का उल्लेख मिलता है। वे लोग झाक और पूजा-पाठ के बल पर शताब्दियों तक समाज पर छाए रहे परंतु आज के वैज्ञानिक युग में उनका नामोनिशान तक नहीं है। अफ्रीका की कुछ जंगली जातियों में तथा भारत के आदिवासियों में आज भी उन का आधिपत्य है। यूरोप में आज उनका अस्तित्व नहीं है, केवल कथा-कहानियों में ही इस का उल्लेख मिलता है।

जब तक हम अंधविश्वासों और प्राचीन परंपराओं से चिपके रहेंगे तब तक ये हमारा शोषण करते रहेंगे। अतः आज आवश्यकता है इन धार्मिक अंधविश्वासों और पंडेपुजारियों द्वारा फैलाए गए भ्रम जाल तथा मिथ्या आडंबर से मुक्त होने की।

(स्रोत : पुस्तक ''तर्क से काटिए अंधविश्वासों का जाल'' संपादक : राकेश नाथ, विश्व बुकस)

पत्थर का 'चमत्कार'

- डॉ. नरेंद्र दाभोलकर

गाँव के उस पार अहाते में ही, आधे मील की दूरी पर एक पीर का छोटा स्थान अपनी जड़ें जमा रहा था-गैबीबाबा का पीर। पीर के आगे चक्की के आकार का बीच में सूराख किया हुआ एक पत्थर रखा था। उसे महाराष्ट्र के सतारा जिले के पाटण तहसील से लाया गया था।

यह पत्थर मानो मूर्तिमान चमत्कार ही था। पत्थर को हाथ लगाकर भक्त को प्रश्न पूछना होता था। यदि प्रश्न का उत्तर सकारात्मक होता है, तब तो पत्थर भारी बन जाता। तब उसे उठाना कठिन हो जाता। लेकिन उत्तर नकारात्मक होने पर पत्थर फूल के समान हल्का बनकर ऊपर उठ जाता। प्रश्न कोई भी हो, कठिनाई किसी भी प्रकार की रहे-भला आदमी लापता हुआ हो या भैंस, खरीद-बिक्री संबंधी सलाह लेनी हो या किसी द्वारा की गई जादूगरी या करनी की बात हो। पहले प्रश्न 'जादूगरी की गई है या नहीं ?' पर पत्थर भारी हुआ तो आगे का प्रश्न कि 'यदि 'अ' ने की है तो पत्थर भारी बन जाओ, नहीं तो हल्का बन जाओ।' पत्थर हल्का बनने पर 'ब' के नाम से फिर वही प्रश्न। स्वाभाविक रूप से जितने प्रश्न अधिक पैसे भी उतने ही अधिक। पाँच पैसों से लेकर पाँच सौ रुपए रखने तक की बोली लगती थी। जिनके नाम सामने आते (करनी करने वाले), उनसे बाद में झगड़ा झंझट होने की बात तय रहती थी।

आस-पास के इलाके में इसका प्रभाव बढ़ रहा था। बृहस्पतिवार, अमावस और पूर्णिमा के दिन सगुन (देवता की मूर्ति पर फूल आदि लगाकर शकून पूछना/ईश्वरीय आज्ञा प्राप्त करना) लगाए जाते। इन दिनों भीड़ बढ़ी रहती थी।

दो तारीख की सुबह मैं, प्रा. आर्डे (मूलतः नागराले गाँव के लेकिन सतारा में अध्यापक रहे), ओ.बी.सी. संगठन के नेता नेताजी गुरव, कराड के पत्रकार प्रवीण लांजेकर नागराला गाँव (महाराष्ट्र) में पहुँचे। कराड के छात्रभारती के आठ-दस छात्र भी बड़े उत्साह से आए थे। हमारे किर्लोस्कर बाड़ी पहुँचने से पहले ही नागराला की बस चली गई थी। बाबूराव जाधव पुलिस को लाने कुंडल गए थे। पुलिस थाने के भाऊसाहब बाहर गए थे। दो दिन पहले दी गई अर्जी अब तक हवलदारों ने उन तक नहीं पहुँचाई थी। बारह बजे पी.एस.आई. आए। उनको समझाने पर दो हवलदारों की हमारे लिए नियुक्ति की गई। हम सभी किराए की साइकिलें गाँव में रखकर गन्ने के खेतों से होते हुए पीर के स्थल तक पहुँचे। सुबह आठ और दस बजे की बस से आनेवाले भक्तों की भीड़ कम थी, फिर भी वहाँ बीस-पच्चीस लोग थे। जिज्ञासा से गाँव से आए कुछ ओर भी लोग थे।

खेत में चारों दिशाओं से ईंट से बना यह स्थान था। ईंटों पर सफेदी की गई थी। दीवार पर दो-तीन हरे निशान गाड़े हुए थे। अंदर दो कब्रें थीं एक छोटी और दूसरी बड़ी। उन पर मखमली हरी चादर चढ़ाई गई थी। कब्र के चबूतरे पर दस फीट की खुली जगह थी। उसके सामने हरे रंग का, फुट-डेढ़ फुट व्यास का, छह इंच मोटा, बीच में सूराख युक्त तराशा हुआ पत्थर पड़ा था। जैसे ही हम अंदर जाकर लंगर के पास इकट्ठे हुए, वैसे ही ग्रामीणों तथा भक्तों का जमावड़ा भी अंदर आ गया। बाजू के कमरे से जैतुनबी मुल्ला भी आई। सफेद कपड़े पहनी हुई वह चबूतरे से सटकर बैठ गई। मैंने अपनी टेप शुरू की और कहा, "बहन जी, हम पत्थर की कीर्ति सुनकर आए हैं। क्या यह सच है कि प्रश्न पूछने पर यदि उत्तर सकारात्मक हो तो पत्थर भारी हो जाता है, नहीं तो फूल जैसा हल्का हो जाता है?"

औरत बोली, "बिलकुल सच।"

"मुझे यह नहीं जँचता। पत्थर का वज़न ऐसे कभी कम नहीं होता और न ही बढ़ता है, यह घोखा है," मैंने कहा।

"आप किसी भी पत्थर पर बैठकर खुद इसकी परीक्षा ले सकते हो," औरत ने कहा।

हमने थैली से वजन का काँटा निकाला। सभी के सामने पत्थर का वजन किया जो पंद्रह किलो था। मैंने कहा, "बहन जी, हममें से कोई भी इस पर बैठेगा। मेरे प्रश्न ये हैं-अभी वसंतदादा पाटील राजस्थान के राज्यपाल हैं या

नहीं? मेरी जेब में दस का नोट है या नहीं ? दोनों प्रश्नों के उत्तर सकारात्मक हैं। पत्थर भारी होना चाहिए, लेकिन मैं अभी बता दूँ कि लंगर बिलकुल सहज ऊपर उठ जाएगा।''

''तो आप ऐसा करें कि अपना ही आदमी बिठा दीजिए। शायद उसे यह बात जँच गई होगी।''

उसने एक को आवाज लगाई। पाटील नाम का वह आदमी पत्थर पर पालथी मारकर बैठ गया। झुककर पत्थर को प्रणाम किया। दो मिनट का ध्यान कर औरत बोली, ''गैबी बाबा, तुम्हारे चमत्कार को चुनौती देने के लिए ये लोग आए हैं। यदि सच है तो पत्थर को भारी बनाओ, नहीं तो फूल के समान हल्का बनाओ।''

असल में पाटील उस औरत का आदमी था। उसका पत्थर के चमत्कार पर विश्वास था। लेकिन वातावरण के तनाव का प्रभाव और उसकी सच्चाई के परिणामस्वरूप उसने पत्थर को बड़ी सहजता से ऊपर उठाया। हमारे कार्यकर्ता जाधव तौलने का काँटा लेकर तैयार ही थे। उठाए गए फूल जैसे हल्के पत्थर को काँटा लगाकर वजन किया गया। बिलकुल पंद्रह किलो। हमने जैतुनबी को फटकारा। यह फरेब नहीं तो ओर क्या है? वह कुछ नहीं बोली। पाँच मिनट ऐसे ही बीत गए। वातावरण में शांति के साथ तनाव भी था। गर्दन नीचे कर बैठी औरत ने गर्दन उठाकर लंगर को घुमाया। बड़ी उम्मीद से लंगर की ओर देखा और भूत सवार होने जैसी चिल्लाई, ''गैबी बाबा, तुम्हें झूठा ठहराने के लिए ये सतारा से आए हैं। यदि तुम सच हो तो भारी बन जाओ, झूठ हो तो हल्के बनो।''

फिर एक बार पाटील ने पत्थर को बड़ी सहजता से ऊपर उठाया।

पत्थर यदि दोनों बार ऊपर न भी उठता, तो भी हमारा नुकसान नहीं होने वाला था। लेकिन अब काम ओर भी आसान बना था। मैंने कहा, ''बहन जी, स्वयं तुम्हारा गैबी बाबा झूठ होने की बात कर रहा है और यदि नहीं बताता तो भी यह झूठ ही था, क्योंकि तुमने यह देखा है कि फूलों के समान हल्का लगने वाले पत्थर का वजन 15 किलो ही रहा है। तुम्हारा पीर और लोगों की भक्ति से हमारा झगड़ा नहीं है। लेकिन तुम्हारे इस पाखंड से जरूर है। आज से तुम्हें इस प्रकार के पाखंड को बंद करना होगा, नहीं तो हम बात को आगे तक ले जाएँगे।''

औरत ने गर्दन हिलाकर हामी भरी।

हमने कागज पर उसका इकरारे जुर्म लिखकर दर्ज किया। इस अंधेरगर्दी को रोकने का उससे लिखित आश्वासन लिया।

लिखते समय औरत ने परेशान होकर पत्थर को दूसरी ओर धकेल दिया, ''इसे भी ले जाइए, नहीं चाहिए ये यहाँ।'' परेशान होकर उसने कहा।

जायदाद हस्तांतरण का प्रश्न आने पर अब तक शांत रहे हवलदार आगे आए। लेकिन पत्थर को जबर्दस्ती उठाने में श्रद्धा की बात आड़े आने की संभावना थी। पुलिस ने पूछा, ''बहन जी, आप अपनी मर्जी से पत्थर दे रही हो ? आपकी कोई शिकायत नहीं है?'' उसने हाँ में गर्दन हिलाई।

पुलिस पंचनामे पर औरत की सम्मति के प्रमाणस्वरूप उसके अँगूठे का निशान लिया गया। उपस्थित गाँववालों के साथ पुलिस के भी हस्ताक्षर लिए गए।

अपने साथ पत्थर लेकर हम वहाँ से निकले। कुछ लोगों के मन में विचार आया कि वापसी के रास्ते पर एक कुआँ है। साइकिल से इस बोझ को ढोने से अच्छा है कि इसे कुएँ में फेंक दें। लेकिन आर्डे सर ने ऐसा करने से मना कर दिया। उन्होंने कहा, ''कल विपरीत अफवाहें फैलाई जाएँगी कि पत्थर इतना भारी होता गया कि इन लोगों को उसे साथ ले जाना असंभव हो गया। इसलिए इन्हें मजबूरन कुएँ में फेंकना पड़ा।''

हम नागराले में वापस आए। गाँववाले बड़े प्रभावित नजर आए। पाठशाला में सभा हुई। कक्षा 8वीं, 9वीं तथा 10वीं के छात्र-छात्राओं के साथ गाँववाले भारी संख्या में पाठशाला के आँगन में इकट्ठे हुए। टेबल पर पत्थर रखा गया। प्रा. आर्डे के साथ मेरा भी भाषण हुआ। छात्रों का उत्साह देखने लायक था। पत्थर से शुरू हुई भाषण की गाड़ी भूत-सवार होने की खरी-खोटी बातों की चर्चा को चक्कर लगाकर समाप्त हुई। रामानंद नगर के नजदीक के गाँव से आए कुछ छात्र कहने लगे, ''आप से हमें बहुत कुछ सुनना है, सीखना है। आप एक दिन गाँव में ठहरने के लिए आ जाइए-हम अंधविश्वास निर्मूलन के लिए उत्सुक हैं।''

(स्रोत : पुस्तक 'अंधविश्वास उन्मूलन : आचार' (दूसरा भाग)- डॉ. नरेंद्र दाभोलकर, डॉ. सुनील कुमार लवटे, अनुवादक : प्रकाश कांबले)

अछूत का प्रश्न

– शहीद भगत सिंह

हमारे देश जैसे बुरे हालात किसी दूसरे देश के नहीं हुए। यहाँ अजब-अजब सवाल उठते रहते हैं।

एक अहम सवाल अछूत-समस्या है।

समस्या यह है कि 30 करोड़ की जनसंख्या वाले देश में जो 6 करोड़ लोग अछूत कहलाते हैं, उनके स्पर्श-मात्र से धर्मभ्रष्ट हो जायेगा! उनके मन्दिरों में प्रवेश से देवगण नाराज़ हो उठेंगे! कुएँ से उनके द्वारा पानी निकालने से कुआँ अपवित्र हो जायेगा! ये सवाल बीसवीं सदी में किये जा रहे हैं, जिन्हें कि सुनते ही शर्म आती है।

शहीद भगत सिंह के जून, 1928 के 'किरती' में 'विद्रोही' के नाम से प्रकाशित लेख के अंश।

हमारा देश बहुत अध्यात्मवादी है, लेकिन हम मनुष्य को मनुष्य का दर्जा देते हुए भी झिझकते हैं जबकि पूर्णतया भौतिकवादी कहलाने वाला यूरोप कई सदियों से इन्क़लाब की आवाज़ उठा रहा है। उन्होंने अमेरिका और फ्रांस की क्रान्तियों के दौरान ही समानता की घोषणा कर दी थी। आज रूस ने भी हर प्रकार का भेदभाव मिटाकर क्रान्ति के लिए कमर कसी हुई है। हम सदा ही आत्मा-परमात्मा के वजूद को लेकर चिन्तित होने तथा इस ज़ोरदार बहस में उलझे हुए हैं कि क्या अछूत को जनेऊ दे दिया जाये ? वे वेद-शास्त्र पढ़ने के अधिकारी हैं अथवा नहीं? हम उलाहना देते हैं कि हमारे साथ विदेशों में अच्छा सलूक नहीं होता। अंग्रेज़ी शासन हमें अंग्रेज़ों के समान नहीं समझता। लेकिन क्या हमें यह शिकायत करने का अधिकार है?

आज इस सवाल पर बहुत शोर हो रहा है। उन विचारों पर आजकल विशेष ध्यान दिया जा रहा है। देश में मुक्ति-कामना जिस तरह बढ़ रही है, उसमें साम्प्रदायिक भावना ने ओर कोई लाभ पहुँचाया हो अथवा नहीं लेकिन एक लाभ ज़रूर पहुँचाया है। अधिक अधिकारों की माँग के लिए अपनी-अपनी क़ौम की संख्या बढ़ाने की चिन्ता सभी को हुई। मुस्लिमों ने ज़रा ज़्यादा ज़ोर दिया। उन्होंने अछूतों को मुसलमान बनाकर अपने बराबर अधिकार देने शुरू कर दिये। इससे हिन्दुओं के अहम को चोट पहुँची। स्पर्धा बढ़ी। फ़साद भी हुए। धीरे-धीरे सिखों के बीच अछूतों के जनेऊ उतारने या केश कटवाने के सवालों पर झगड़े हुए। अब तीनों क़ौमें अछूतों को अपनी-अपनी ओर खींच रही हैं। इसका शोर-शराबा है। उधर ईसाई चुपचाप उनका रुतबा बढ़ा रहे हैं। चलो, इस सारी हलचल से ही देश के 'दुर्भाग्य' की लानत दूर हो रही है।

इधर जब अछूतों ने देखा कि उनकी वजह से इनमें फ़साद हो रहे हैं तथा उन्हें हर कोई अपनी-अपनी ख़ुराक समझ रहा है तो वे अलग ही क्यों न संगठित हो जायें? इस विचार के अमल में अंग्रेज़ी सरकार का कोई हाथ हो अथवा न हो लेकिन इतना अवश्य है कि इस प्रचार में सरकारी मशीनरी का काफ़ी हाथ था। 'आदि धर्म मण्डल' जैसे संगठन उस विचार के प्रचार का परिणाम हैं।

अब एक सवाल ओर उठता है कि इस समस्या का सही निदान क्या हो? इसका जवाब बड़ा अहम है। सबसे पहले यह निर्णय कर लेना चाहिए कि सब इन्सान समान हैं तथा न तो जन्म से कोई भिन्न पैदा हुआ और न कार्य-विभाजन से। अर्थात क्योंकि एक आदमी ग़रीब मेहतर के घर पैदा हो गया है, इसलिए जीवनभर मैला ही साफ़ करेगा और दुनिया में किसी तरह के विकास का काम पाने का उसे कोई हक़ नहीं है, ये बातें फिज़ूल हैं। इस तरह हमारे पूर्वज आर्यों ने इनके साथ ऐसा अन्यायपूर्ण व्यवहार किया तथा उन्हें नीच कहकर दुत्कार दिया एवं निम्नकोटि के कार्य करवाने लगे। साथ ही यह भी चिन्ता हुई कि कहीं ये विद्रोह न कर दें, तब पुनर्जन्म के दर्शन का प्रचार कर दिया कि यह तुम्हारे पूर्वजन्म के पापों का फल है। अब क्या हो सकता है? चुपचाप दिन गुज़ारो! इस तरह उन्हें धैर्य का उपदेश देकर वे लोग उन्हें लम्बे समय तक के लिए

शान्त करा गये। लेकिन उन्होंने बड़ा पाप किया। मानव के भीतर की मानवीयता को समाप्त कर दिया। आत्मविश्वास एवं स्वावलम्बन की भावनाओं को समाप्त कर दिया। बहुत दमन और अन्याय किया गया। आज उस सबके प्रायश्चित का वक़्त है।

इसके साथ एक दूसरी गड़बड़ी हो गयी। लोगों के मनों में आवश्यक कार्यों के प्रति घृणा पैदा हो गयी। हमने जुलाहे को भी दुत्कारा। आज कपड़ा बुनने वाले भी अछूत समझे जाते हैं। यू-पी- की तरफ़ कहार को भी अछूत समझा जाता है। इससे बड़ी गड़बड़ी पैदा हुई। ऐसे में विकास की प्रक्रिया में रुकावटें पैदा हो रही हैं।

जब गाँवों में मज़दूर-प्रचार शुरू हुआ, उस समय किसानों को सरकारी आदमी यह बात समझाकर भड़काते थे कि देखो, ये भंगी को सिर पर चढ़ा रहे हैं और तुम्हारा काम बन्द करवायेंगे। बस किसान इतने में ही भड़क गये। उन्हें याद रहना चाहिए कि उनकी हालत तब तक नहीं सुधर सकती जब तक कि वे इन ग़रीबों को नीच और कमीना कहकर अपनी जूती के नीचे दबाये रखना चाहते हैं। अक्सर कहा जाता है कि वे साफ़ नहीं रहते। इसका उत्तर साफ़ है - वे ग़रीब हैं। ग़रीबी का इलाज करो। ऊँचे ऊँचे कुलों के ग़रीब लोग भी कोई कम गन्दे नहीं रहते। गन्दे काम करने का बहाना भी नहीं चल सकता, क्योंकि माताएँ बच्चों का मैला साफ़ करने से मेहतर तथा अछूत तो नहीं हो जातीं।

लेकिन यह काम उतने समय तक नहीं हो सकता जितने समय तक कि अछूत क़ौमें अपने आप को संगठित न कर लें। हम तो समझते है कि उनका स्वयं को अलग संगठनबद्ध करना तथा मुस्लिमों के बराबर गिनती में होने के कारण उनके बराबर अधिकारों की माँग करना बहुत आशाजनक संकेत है। या तो साम्प्रदायिक भेद का झंझट ही ख़त्म करो, नहीं तो उनके अलग अधिकार उन्हें दे दो। कौंसिलों और असेम्बलियों का कर्त्तव्य है कि वे स्कूल कॉलेज, कुएँ तथा सड़क के उपयोग की पूरी स्वतन्त्रता उन्हें दिलायें। ज़बानी तौर पर ही नहीं, वरन साथ ले जाकर उन्हें कुओं पर चढ़ायें। उनके बच्चों को स्कूलों में प्रवेश दिलायें। लेकिन जिस लेजिस्लेटिव असेम्बली में बाल-विवाह के विरुद्ध पेश किये बिल तथा मज़हब के बहाने हाय तौबा मचायी जाती है, वहाँ वे अछूतों को अपने साथ शामिल करने का साहस कैसे कर सकते हैं?

इसलिए हम मानते हैं कि उनके अपने जन-प्रतिनिधि हों। वे अपने लिए अधिक अधिकार माँगें। हम तो साफ़ कहते हैं कि उठो, अछूत कहलाने वाले असली जन-सेवकों तथा भाइयों उठो! अपना इतिहास देखो। गुरु गोविन्द सिह की फ़ौज की असली शक्ति तुम्हीं थे! शिवाजी तुम्हारे भरोसे पर ही सबकुछ कर सके, जिस कारण उनका नाम आज भी ज़िन्दा है। तुम्हारी कुर्बानियाँ स्वर्णाक्षरों में लिखी हुई हैं। तुम जो नित्यप्रति सेवा करके जनता के सुखों में बढ़ोत्तरी करके और ज़िन्दगी सम्भव बनाकर यह बड़ा भारी अहसान कर रहे हो, उसे हम लोग नहीं समझते। लैण्ड-एलिएनेशन एक्ट के अनुसार तुम धन एकत्र कर भी ज़मीन नहीं ख़रीद सकते। तुम पर इतना ज़ुल्म हो रहा है कि मिस मेयो मनुष्यों से भी कहती हैं - उठो, अपनी शक्ति को पहचानो। संगठनबद्ध हो जाओ। असल में स्वयं कोशिशें किये बिना कुछ भी न मिल सकेगा। (Those who would be free must themselves strike the blow) स्वतन्त्रता के लिए स्वाधीनता चाहने वालों को स्वयं यत्न करना चाहिए। इन्सान की धीरे-धीरे कुछ ऐसी आदतें हो गयी हैं कि वह अपने लिए तो अधिक अधिकार चाहता है, लेकिन जो उनके मातहत हैं उन्हें वह अपनी जूती के नीचे ही दबाये रखना चाहते हैं। कहावत है, 'लातों के भूत बातों से नहीं मानते'। अर्थात संगठनबद्ध हो अपने पैरों पर खड़े होकर पूरे समाज को चुनौती दे दो। तब देखना, कोई भी तुम्हें तुम्हारे अधिकार देने से इन्कार करने की ज़ुर्रत न कर सकेगा। तुम दूसरों की ख़ुराक मत बनो। दूसरों के मुँह की ओर न ताको। लेकिन ध्यान रहे, नौकरशाही के झाँसे में मत फँसना। यह तुम्हारी कोई सहायता नहीं करना चाहती, बल्कि तुम्हें अपना मोहरा बनाना चाहती है। यही पूँजीवादी नौकरशाही तुम्हारी ग़ुलामी और ग़रीबी का असली कारण है। इसलिए तुम उसके साथ कभी न मिलना। उसकी चालों से बचना। तब सब कुछ ठीक हो जायेगा। तुम असली सर्वहारा हो...संगठनबद्ध हो जाओ। तुम्हारी कुछ हानि न होगी। बस ग़ुलामी की ज़ंजीरें कट जायेंगी। उठो, और वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध बग़ावत खड़ी कर दो। धीरे-धीरे होने वाले सुधारों से कुछ नहीं बन सकेगा। सामाजिक आन्दोलन से क्रान्ति पैदा कर दो तथा राजनीतिक और आर्थिक क्रान्ति के लिए कमर कस लो। तुम ही तो देश का मुख्य आधार हो, वास्तविक शक्ति हो, सोये हुए शेरो! उठो, और बग़ावत खड़ी कर दो।

महाकुंभ मेला: धार्मिक आयोजन या आस्था में अवसर ?

- कृष्ण कायत

पुरातनकाल में महाकुंभ सामाजिक समरसता का प्रतीक रहा है। कुंभ मेला जाति, धर्म, भाषा और सामाजिक वर्ग भेद से परे सभी लोगों को एकजुट करता रहा है। इस मेले में अमीर-गरीब, साधु-संत और आम नागरिक समान रूप से भाग लेते रहे हैं, जिससे आंशिक ही सही, सामाजिक समानता को बढ़ावा मिलता रहा है। कुंभ मेला आसपास के स्थानीय लोगों के लिए रोजगार व महत्वपूर्ण आर्थिक अवसर प्रदान करता रहा है। स्थानीय व्यवसाय के तहत मेला क्षेत्र में दुकानें, शिल्पकार, हस्तशिल्प और स्थानीय उत्पादों की बिक्री से छोटे व्यापारियों को रोजगार मिलता है।

लेकिन वर्तमान दौर में व्यक्तिगत धार्मिक भावनाओं व आस्था का इस्तेमाल राजनीतिक ध्रुवीकरण के लिए खुल कर किया जा रहा है। प्रयागराज महाकुंभ शुरू होने से काफी दिन पहले सांप्रदायिक ताकतों के प्रभाव में धार्मिक ठेकेदारों व तथाकथित गुरुओं ने इस मेले के दौरान एक धर्म विशेष के लोगों से इस मेले में प्रवेश निषेध करने के आह्वान किए और उन्हें वहां दुकानें, ठेले या व्यापारिक प्रतिष्ठान खोलने से रोका गया जिससे वर्षों पुरानी सामाजिक समरसता की भावना को ठेस पहुंची।

उत्तर प्रदेश की योगी सरकार व केंद्र सरकार ने प्रयागराज महाकुंभ के माध्यम से राजनीतिक रोटियां सेंकने के लिए इस मेले बारे बहुत प्रचार-प्रसार किया व जनता की धार्मिक भावनाओं को भुनाने का काम किया। स्पेशल रेलगाड़ियां चलाई गईं। पूरे देश से श्रद्धालुओं को यहां लाने के लिए यातायात के साधनों का प्रबंध किया गया।

उत्तर प्रदेश सरकार ने महाकुंभ 2025 के आयोजन के लिए 5,435.68 करोड़ रुपए का विशाल बजट निर्धारित किया जो कि अब तक का किसी भी धार्मिक आयोजन पर किए गए खर्च से बहुत ज्यादा है।

सरकार द्वारा श्रद्धालुओं के लिए महाकुंभ में आधुनिक व बेहतरीन सुविधाओं के दावे किए गए। विभिन्न कंपनियों द्वारा इस मेले से व्यापारिक लाभ कमाने के लिए आधुनिक साज सज्जा सहित टैंट व अन्य सुविधाओं का इंतजाम किया गया है। बताते हैं कि प्रतिदिन सात हजार रूपए से लेकर प्रतिदिन लाख रुपए तक एक कमरे का किराया निर्धारित किया गया है।

वी.आई.पी. लोगों व नेताओं के लिए विशेष प्रबंध किए गए। योगी सरकार मंत्री मंडल सहित व विभिन्न अमीर पूंजीपति, धन्ना सेठ वीआईपी सुविधाओं में संगम स्नान कर 'पाप' धो चुके हैं।

देश के विभिन्न हिस्सों से योगी, साधु-संतों, अघोरी बाबा व नागा साधुओं द्वारा महाकुंभ में डेरे लगाए गए हैं जो इस महाकुंभ दौरान सभी शाही स्नान पूर्ण कर रहे हैं।

गोदी मीडिया द्वारा दिन-रात इस मेले की कवरेज कर महिमा मंडन किया जा रहा है। आंकड़ों को बढ़ा चढ़ा कर बताया जा रहा है इसके अतिरिक्त हजारों यूट्यूबर व डिजिटल मीडिया चैनल रीलें व कवरेज की पोस्टें सोशल मीडिया पर डाल रहे हैं। सोशल मीडिया पर डाली जा रही पोस्टों में कहीं भी धार्मिक या आध्यात्मिक वातावरण के दर्शन नहीं होते। महाकुंभ से वायरल होने वाले वीडियोज में नागा साधुओं (कांटों पर सोने वाले, लिंग से वाहन खींचने वाले, गालियां निकालने वाले, आते जाते लोगों को छड़ी मारने वाले), आईआईटीयन बाबा, रूद्राक्ष बेचने वाली मोनालिसा, माडल से साध्वी बनी सुंदरियां ही मुख्य आकर्षण का केंद्र बने हुए हैं।

वैसे तो हर कुंभ मेले में लोगों की धार्मिक आस्थाओं के कारण बहुत भीड़ रहती है परन्तु इस बार सरकार द्वारा राजनीतिक लाभ के लिए किए गए प्रयासों के फलस्वरूप 29 जनवरी को मौनी अमावस्या के अवसर पर इतनी भीड़ एकत्रित हो गई कि भगदड़ मच गई। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 40 लोगों की कुचले जाने से मौत हो गई व सैंकड़ों लोग घायल हो गए हैं। आलम यह है कि अभी तक लोगों को अपने बिछुड़े हुए परिजन नहीं मिल रहे हैं। कोई उनकी सुनवाई नहीं कर रहा है। सरकार मौत के आंकड़े छुपाने में लगी है। दुर्घटना के बाद अस्पतालों में जहां शव रखे गए थे वहां मीडिया को कवरेज करने से रोका गया।

हादसे के बाद ही हम क्यों जागते हैं ?

महाकुंभ की शुरुआत से पहले से ही सरकार की तरफ से दावा किया जा रहा था कि इस बार रिकॉर्ड संख्या में करोड़ों श्रद्धालु संगम में डुबकी लगाएंगे। खुद सीएम योगी आदित्यनाथ ने एक इंटरव्यू में कहा था कि मौनी अमावस्या से पहले तक ही 10 करोड़ श्रद्धालु स्नान कर चुके हैं। पूरे आयोजन की समाप्ति तक यहां दुनिया के जितने लोग स्नान करेंगे, वो भारत और चीन की जनसंख्या के बाद दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी आबादी होगी। जाहिर है इतनी बड़ी संख्या एक जगह पहुंचेगी तो उस जगह दबाव बढ़ ही जाएगा।

प्रयागराज में आयोजित महाकुंभ 2025 का आगाज हर्षोल्लास के साथ हुआ था, लेकिन यह आयोजन अव्यवस्थाओं और दुखद घटनाओं की वजह से चर्चा का विषय बन गया है। करोड़ों श्रद्धालुओं की आस्था और उम्मीदों से जुड़े इस महापर्व में हुई अव्यवस्थाओं और कई लोगों की मौत की जिम्मेदारी सीधे तौर पर उत्तर प्रदेश सरकार पर आती है। यह घटना न केवल प्रशासनिक लापरवाही को उजागर करती है, बल्कि सरकार की तैयारियों और जनकल्याण के प्रति उसकी प्रतिबद्धता पर भी सवाल खड़े करती है। अव्यवस्थाओं का सिलसिला महाकुंभ जैसे विशाल आयोजन की सफलता के लिए योजनाबद्ध तैयारी और कुशल प्रबंधन की आवश्यकता होती है। लेकिन प्रयागराज महाकुंभ 2025 में यह देखने को मिला कि प्रशासनिक व्यवस्था पूरी तरह से चरमरा गई। श्रद्धालुओं की भीड़ को नियंत्रित करने, स्वच्छता, पानी, बिजली, और चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था में गंभीर कमियां सामने आईं। कुंभ मेले के मुख्य स्नान दिवस पर भीड़ के दबाव में प्रशासन की नाकामी साफ दिखाई दी, जिसके चलते कई लोग घायल हुए और कुछ की मौत हो गई।

महाकुंभ के दौरान हुई मौतों की घटनाएं हृदयविदारक हैं। भीड़भाड़, अव्यवस्था और प्रशासनिक लापरवाही के कारण कई श्रद्धालुओं की जान चली गई। कुछ लोग भीड़ में कुचलने से मारे गए, तो कुछ की मौत अस्पतालों में पर्याप्त चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में हुई। यह स्थिति न केवल दुखद है, बल्कि यह सरकार की जवाबदेही और प्रबंधन क्षमता पर गंभीर सवाल खड़े करती है।

उत्तर प्रदेश सरकार महाकुंभ जैसे आयोजन की मेजबानी करती है, इसलिए इसकी सफलता और विफलता की जिम्मेदारी सरकार पर ही आती है। यह स्पष्ट है कि सरकार ने इस आयोजन के लिए पर्याप्त तैयारी नहीं की। भीड़ प्रबंधन, स्वच्छता, और आपातकालीन सेवाओं की कमी ने सरकार की लापरवाही को उजागर किया है। सरकार को इस घटना की गंभीरता को समझते हुए तत्काल कदम उठाने चाहिए और पीड़ित परिवारों को न्याय दिलाना चाहिए।

भगदड़ में हुई मौतों पर कुछ धार्मिक बाबाओं के ब्यान आए हैं कि कुंभ में मरने वाले लोगों को मोक्ष प्राप्त हो गया है वो मरे नहीं हैं। ये वही लोग हैं जिन्होंने बोला था कि ''जो महाकुंभ नही नहायेगा सनातनियों वो मोक्ष नही पायेगा। यह धर्मयुद्ध है।''

पूरे प्रयागराज को हजारों करोड़ रुपयों की सरकारी / गैर सरकारी फंडिग से पाट दिया गया। 3600 करोड़ का बजट लगभग खर्च हुआ जिसने उत्तरप्रदेश सरकार के विभागों मसलन पी.डब्ल्यू.डी. आदि का बजट गड़बड़ा दिया है। कितने ठेकेदार और मार्केटिंग कंपनियां इस महाकुंभ से आर्थिक रूप से समृद्ध हो गईं और जनता को धक्के मिल रहें हैं। भीड़ को दर्दनाक मौत मिल गई है। लाशों का सही आंकड़ा तक मीडिया को बताया नही गया है। शवों की अंत्येष्टि के पहले पुनः अमृत स्नान हुआ और फिर हेलीकॉप्टर से पुष्प वर्षा की जा रही थी। पाषाण असंवेदनशील ब्यूरोक्रेसी की बदइंतजामी है ये। इस बड़बोलेपन पर ध्यान दीजिए यह आस्था मे द्रवित जनता के लिए मनोसामाजिक ब्रेनवॉश जैसा वक्तव्य है।

अव्यवस्थित भीड़ प्रबंधन के अभाव में पहले भी कई बार भगदड़ के कारण लोगों की जान गई है। 2013 के प्रयागराज महाकुंभ में रेलवे स्टेशन पर मची भगदड़ में 36 लोगों की मृत्यु हो गई थी। कुंभ पर्यावरणीय क्षति का भी कारण बनता है जब श्रद्धालु बड़ी मात्रा में प्लास्टिक, फूल–

मालाएं और अन्य अपशिष्ट पदार्थ नदी में प्रवाहित कर देते हैं, जिससे जलीय जीवों और जल गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा, अस्थायी नगरों के निर्माण के लिए हजारों पेड़ काटे जाते हैं और भूमि की उर्वरता प्रभावित होती है।

महाकुंभ में सरकारी बजट का एक बड़ा हिस्सा खर्च किया जाता है। 2021 के हरिद्वार महाकुंभ पर उत्तराखंड सरकार ने 4,200 करोड़ रुपये से अधिक खर्च किए थे। हालांकि, यह धनराशि अक्सर भ्रष्टाचार और अनियमितताओं का शिकार हो जाती है। ठेकेदारों और प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा फर्जी बिलों और अधूरे कार्यों की शिकायतें आम हैं।

लोगों की व्यक्तिगत धार्मिक आस्थाओं तक तो ठीक था लेकिन इसमें दिक्कतें शुरू तब हुई जब धर्म में राजनीतिक घुसपैठ शुरू कर दी गई। बहुसंख्यक समुदाय को यह दर्शाने के लिए कि केवल हम ही उनके धार्मिक हितों की रक्षा कर सकते हैं और हिंदू धर्म (सनातन) का विकास हमारी सरकार में ही हो सकता है, प्रयागराज महाकुंभ को सफल बनाने के लिए लोगों को हर तरह का प्रचार कर बुलाया गया। 144 वर्षों बाद बनने वाले योग व पुण्य कमाने के सब्जबाग विभिन्न कथावाचकों व प्रायोजित सेलिब्रिटी द्वारा मीडिया के माध्यम से दिखाए गए।

प्रयागराज महाकुंभ के माध्यम से हर प्रकार के राजनीतिक लाभ लेने की कुचालें जारी हैं। इसी चाल के अधीन दिल्ली राज्य के चुनाव वाले दिन प्रधानमंत्री मोदी के महाकुंभ में स्नान का कार्यक्रम बनाया गया ताकि ऐन वोटिंग वाले दिन सभी न्यूज चैनलों व मीडिया के माध्यम से दिल्ली के हिंदू मतदाताओं को रिझाया जा सके।

सामाजिक समरसता व समानता का भाव जोकि महाकुंभ की विरासत रही है उसे भी इस प्रयागराज महाकुंभ में तार तार कर दिया गया जब रसूखदारों व वीआईपीज के स्नान के लिए संगम पर अलग घाटों का निर्माण कर रिजर्व कर दिया गया व आम जनता के लिए वहां के रास्ते बंद कर दिए गए। इसका परिणाम यह रहा कि आम जनता को तो 15 20 किलोमीटर तक पैदल धूल फांकते हुए संगम तक पहुंचना पड़ रहा है और वीआईपीज की गाड़ियां सीधे संगम घाट तक पहुंच रही हैं और यहीं से सभी सेलिब्रिटी प्रयागराज महाकुंभ की सुविधाओं, अभूतपूर्व व्यवस्थाओं व भव्यता का मीडिया में गुणगान करते नजर आए।

प्रयागराज महाकुंभ की दिव्यता व भव्यता किसके लिए ?

निस्संदेह सरकार व बड़ी-बड़ी हस्तियों के अनुसार यह महाकुंभ दिव्यता व भव्यता भरा है लेकिन प्रश्न यह है कि किसके लिए ? क्योंकि आमजन को तो वहां पहुंचने तक के लिए मारामारी करनी पड़ रही है। रेलगाड़ियों, बसों में पशुओं की तरह ठूंस ठूंस कर यात्रा करनी पड़ी है। वहां पहुंचने पर कितने कितने किलोमीटर पैदल चलना पड़ा है वो भी वी.आई.पीज. की गाड़ियों द्वारा उड़ती धूल फांकते हुए। इतनी भारी भीड़ के लिए न शौचालयों की व्यवस्था रही न पीने के पानी की। गंदगी भरे नालों से गुजर कर खुले आसमान तले इतनी ठंड में रातें बितानी पड़ रही हैं।

प्रयागराज महाकुंभ भव्य रहा है व्यापारियों व पूंजीपतियों के लिए, होटलों, रेस्टोरेंट्स के मालिकों के लिए जो कि दस-दस, बीस-बीस गुणा दामों पर वस्तुएं बेच रहे हैं और हजार-दो हजार रूपए प्रतिदिन वाले कमरों के लिए प्रतिदिन दस-बीस हज़ार से लेकर मनमाने रेट वसूल कर चांदी कूट रहे हैं।

प्रयागराज महाकुंभ भव्यता भरा रहा है हजारों करोड़ के बजट को खर्च करने वाले आला अधिकारियों व ठेकेदारों के लिए, जिन्होंने एक आयोजन में ही कई वर्षों तक की पूंजी हासिल कर ली।

दिव्यता भरा रहा है महाकुंभ अखाड़ों व नागा साधुओं के टोलों के लिए, जो दिन रात वहां अकूत दक्षिणा जमा कर रहे हैं और आमजन को लताड़ लगाते हुए श्रेष्ठता के भाव में जिंदगी के मजे ले रहे हैं।

प्रयागराज महाकुंभ उन राजनीतिक संगठनों व दलों के लिए भी दिव्यता व भव्यता भरा रहा है जिन्होंने आमजन की धार्मिक भावनाओं को भुनाने में प्रगति हासिल करने का प्रयास किया है।

प्रयागराज कुंभ मेला न केवल धार्मिक आयोजन है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति, सामाजिक समरसता और प्रशासनिक कौशल का भी प्रतीक है। यह मेला आस्था और आध्यात्मिकता के साथ-साथ आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। यदि इसे योजनाबद्ध और पर्यावरण सम्मत तरीके से आयोजित किया जाए, तो यह भारत की सांस्कृतिक विरासत को और अधिक समृद्ध बना सकता है।

मंडी डबवाली
98961-05643

अभिभावकों और अध्यापकों के लिए-

नई सवेर पाठशाला

– अनुवादः मुलख पिपली

* यदि आपका बच्चा समय पर सोकर नहीं उठता या स्कूल जाने से टालमटोल करता है :

बच्चे को दिन में किसी अच्छी बात की आशा नहीं, वह चिंताओं, विभिन्न टकरावों, चीख चिल्लाहट व जबरदस्ती उस पर थोपे गए कर्तव्यों के बोझ से तंग है। उसे स्कूल में कुछ अच्छा होने की उम्मीद नहीं। याद न किए गए पाठों के परिणाम स्वरूप बुरी भावनाएं, अपने सहपाठियों से मेलजोल में कठिनाई, अध्यापकों व कुछ बच्चों द्वारा उड़ाया गया मजाक। ऐसा रोज रोज होता है।

अपने बच्चे पर तरस खाएं। उस को इन बीमार भावनाओं की दलदल से निकलने में सहारा दें। याद रखें कि उस की ढ़ीठता और बेचैनी, उसके प्रति अनदेखेपन का परिणाम है। यदि आप इस बात पर ध्यान नहीं देते तो कोई भी सख्ती बच्चे का व्यक्तित्व संवारने में आपकी मदद नहीं कर सकती। हर नई डांट-फटकार मामले को ओर बदतर करेगी। बच्चे में नया जानने की इच्छा नहीं रहेगी, उस का जीवन बदतर हो जाएगा।

– यूरी अज़ारोव

* मेरा पक्का निश्चय है कि ऐसे गुणों के बिना कोई मनुष्य असली अध्यापक नहीं बन सकता। इनमें से सबसे बुनियादी गुण है- बच्चे के मानसिक संसार में दाखिल हो सकने की योग्यता। सिर्फ वही मनुष्य, जो यह नहीं भूलता कि वह भी एक समय बच्चा था, असली अध्यापक बन सकता है। अनेक अध्यापकों का यह दुखांत है कि वे यह भूल जाते हैं कि सबसे पहले विद्यार्थी एक जीवित मनुष्य है, जो ज्ञान, रचनात्मकता और मानवीय संबंधों के संसार में प्रवेश पाने के प्रक्रिया में है।

–वसीली सुखो़म्लीन्स्की

* अगर कोई बच्चा जानता हो कि घर में उसे डांट-फटकार, ताने, सवाल मिलेंगे तो वह बेआराम महसूस करता है।

जैसे-जैसे घर नजदीक आता है, उसमें तनाव की भावना बढ़ने लगती है। वह प्रवेश द्वार पर पांव रखता है, उसकी हलचल स्लो मूवी की तरह होती हैं। वह दीवार के साथ लगकर लंबा समय खड़ा रह सकता है, वह धीरे धीरे जूते उतारता है और शक से अटल सवाल का इंतज़ार करता है कितने अंक मिले तुझे?

उसके मां-बाप ने पहले ही सोचा होता है कि उसे अच्छे अंक नहीं मिले। वह उनकी आंखों में देखने से झिझकता है, इसलिए दीवार की तरफ एकटक देखता रहता है। पर फिर एक और डरावना सवाल आ जाता है। अभिभावकों की बेरहमी के बहुत तबाहकुन नतीजे निकलते हैं।

क्या वे सचमुच यह धारणा बना चुके हैं कि उनका बच्चा कम अंकों से बिन कुछ भी घर नहीं ला सकता?

अगर बच्चे को इतना दरकिनार किया जाता है तो वह अच्छे अंक कहां से लाएगा?

अगर गूढ़ अज्ञानता और किसी विषय में पारंगत होने के हुनर की कमी ने उसकी इच्छा शक्ति को लकवाग्रस्त बना दिया है, उसकी सोचने की शक्ति को नष्ट कर दिया है तो वह अच्छे अंक नहीं ला सकता।

– यूरी अज़ारोव

* बच्चे को कोई ऐसा मनुष्य नहीं पढ़ा सकता जो उसे बेइज्ज़त करता हो।

–जेम्स बालडविन

* जो कुछ बच्चे के अंदर अच्छा है, उसे उल्लासित करके खूबसूरत बनाया जा सकता है। जब अध्यापक बच्चे को बिना दिलचस्पी के पढ़ा रहा होता है, बच्चे कभी ऐसी पढ़ाई के पाबंद नहीं होते। विद्यालय दुनिया को समझने में बच्चे की मदद करें, न कि दीवार बनकर बच्चे और दुनिया के बीच में खड़े हों। **वसीली सुखो़म्लीन्स्की**

---o---

संग्रहः दाता सिंह नमोल
94176-77407

आइंस्टीन की याद में

-सिमरन

'आइंस्टीन!' यह नाम सुनकर क्या आता है तुम्हारे दिमाग में? क्या कोई चित्र बनता है? अगर मैं यह कहूँ कि यह नाम दुनिया के सबसे बुद्धिमान और प्रतिभाशाली वैज्ञानिक का था जिन्होंने अपने वैज्ञानिक खोज से दुनिया को देखने और समझने के हमारे नजरिये को हमेशा के लिए बदल दिया तो कैसी तस्वीर बनाओगे उनकी? क्या चश्मा पहने बहुत संजीदा से दिखते किसी व्यक्ति की? अक्सर तुमने स्कूल में किसी अध्यापक को कहते सुना होगा कि आइंस्टीन जैसा बनने की कोशिश करो। तब तुम भी सोचते होगे कि ऐसा क्या अलग था उनमें जो आज भी लोग हमें उनकी तरह बनने की सलाह देते हैं। क्या आइंस्टीन आम इंसानों से अलग दिखते थे? नहीं! बिलकुल नहीं, आइंस्टीन के भी तुम्हारी और मेरी तरह दो आँखें, एक नाक और दो कान थे। झबरे बिखरे बालों वाले आइंस्टीन को मोजे पहनना पसंद नहीं था। लेकिन अब तुम आइंस्टीन जैसा बनने के लिए बालों में कंघी करना मत छोड़ देना। जानते हो, आइंस्टीन को संगीत से भी बहुत प्रेम था, वह वायलिन बजाया करते थे। उन्हें मोजार्ट (18वीं सदी के प्रसिद्ध संगीतकार) को सुनना बेहद पसंद था।

आइंस्टीन केवल इसीलिए महान नहीं थे कि उनकी वैज्ञानिक खोजों ने विज्ञान की दुनिया में एक क्रांति के युग का आह्वान किया बल्कि वह इसलिए भी महान हैं क्योंकि उनका विज्ञान दुनिया से कटा हुआ नहीं था। अपने आस पास हो रही घटनाओं से वह अलग थलग अपनी जिन्दगी में मगन नहीं थे बल्कि समाज के अंग होने और एक वैज्ञानिक होने की जिम्मेदारी को समझते हुए लगातार अन्याय और शोषण के खिलाफ खड़े रहे। जिस तरह उनके विज्ञान ने पुरानी सोच पर सवाल खड़े किये ठीक उसी तरह उन्होंने अपने समय की सामाजिक और राजनीतिक सोच पर भी सवाल उठाये।
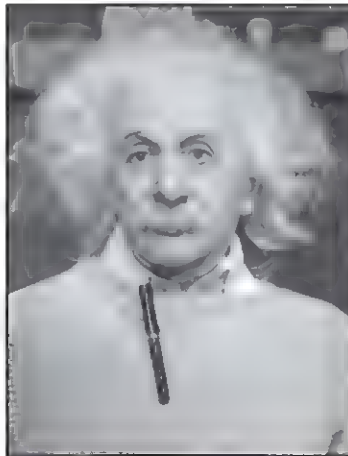
आइंस्टीन का जन्म **14 मार्च 1879 में जर्मनी** में हुआ था। शुरुआती शिक्षा के बाद आइंस्टीन के पिता चाहते थे कि आइंस्टीन इंजीनियर बनें। मगर आइंस्टीन को लकीर का फकीर बन, रट्टा मारकर डिग्रियां हासिल करने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उनका मन तो विज्ञान के ऐसे सवालों में रमता था जिसे शायद उनके अलावा ओर कोई समझ नहीं रहा था। एक बार बचपन में आइंस्टीन को उनके पिता ने एक कम्पास दिया, आइंस्टीन बड़ी रुचि से यह देख कर आश्चर्यचकित होते रहे कि किस तरह उस चुम्बकीय यंत्र की सूई उत्तर दिशा की ओर टिकी रहती है। आइंस्टीन 1986 में स्विस फेडरल पॉलिटेक्निक के दाखिले की परीक्षा में असफल रहे। लेकिन आइंस्टीन ने हार नहीं मानी और फिर से पढ़ाई कर उन्होंने स्विटजरलैंड के जुरीक पॉलिटेक्निक में गणित और भौतिक विज्ञान के 4 साल के डिप्लोमा में दाखिला लेने में कामयाबी हासिल की। अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद आइंस्टीन को किसी बड़े विश्वविद्यालय या अनुसंधान केंद्र में नौकरी नहीं मिली। उनके समय में लोगों ने उनकी प्रतिभा में कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखाई। उन्हें अक्सर एक मामूली विद्यार्थी के रूप में देखा जाता था मगर इस सब का आइंस्टीन पर कुछ ज्यादा असर नहीं पड़ा।

जानते हो सभी महान लोगों जैसे कि वैज्ञानिकों, कलाकारों या संगीतकारों को क्या चीज़ खास बनाती है? उनका आत्मविश्वास और साहस। अगर आइंस्टीन भी अपने आस पास के लोगों की बातें सुनकर यह मान लेते कि वह कुछ भी करने योग्य नहीं हैं और उनमें भी परिस्थितियों से लड़ने का साहस न होता तो आज हम इस झबरे बालों वाले आदमी के बारे में बात नहीं कर रहे होते और 'आइंस्टीन' शब्द आज बुद्धिमत्ता का पर्याय नहीं होता। इसलिए तुम भी हमेशा वह करना जिसमें तुम्हारी रुचि हो चाहे तुम्हे संगीत पसंद हो, या कला या फिर गणित या भूगोल या विज्ञान। अब वापिस आइंस्टीन पर आते हैं।

आइंस्टीन को विज्ञान से प्यार था मगर उन्हें किसी अनुसंधान केंद्र में नौकरी नहीं मिली तो उन्होंने जीवन यापन के लिए स्विस पेटेंट ऑफिस में एक क्लर्क की नौकरी शुरू कर दी। क्लर्क की नौकरी करते हुए आइंस्टीन ने विज्ञान के सवालों पर सोचना बंद नहीं किया बल्कि क्लर्क की नौकरी करते हुए ही आइंस्टीन ने 1905 में अपना पहला अनुसंधान पेपर लिखा जिसके लिए आगे चलकर उन्हें विज्ञान में नोबेल पुरस्कार मिला। इस पेपर में आइंस्टीन ने रोशनी की प्रकृति के बारे में बताया। जब आइंस्टीन ने अपनी खोज को दुनिया के वैज्ञानिकों के सामने रखा तब उनकी बात पर किसी ने ज्यादा ध्यान नहीं दिया। लोगों ने कहा कि एक क्लर्क भला विज्ञान के बारे में क्या जानें। मगर इन सब बातों ने आइंस्टीन को कभी निराश नहीं किया। यह विज्ञान को पढ़ते रहे और नए नए सवालों पर काम करते रहे।

आइंस्टीन की प्रतिभा असल मायने में एक वैजनिक की परिभाषा है। 1914 में जब पहले विश्वयुद्ध के दौरान जर्मनी के वैज्ञानिकों, कलाकारों ने युद्ध के समर्थन में 'मैनिफेस्टो ऑफ 93' (93 वैज्ञानिकों, कलाकारों द्वारा जारी दस्तावेज) जारी किया, तब आइंस्टीन ने विश्वयुद्ध का समर्थन करने वाले इस दस्तावेज की निंदा की, जिसमें 'अंधे राष्ट्रवाद' के नाम पर मासूम लोगों का कत्लेआम किया गया था। उन्होंने अपना एक जवाबी 'मैनिफेस्टो' जारी किया जो युद्ध के खिलाफ था और शान्ति की बात करता था। आइंस्टीन उम्रभर युद्ध के ख़िलाफ़ खुलेआम संघर्ष करते रहे। 1933 में जर्मनी के हिटलर के उदय के साथ आइंस्टीन जर्मनी छोड़ अमरीका में बस गए। आइंस्टीन के मित्र और करीबी वैज्ञानिक हेबर ने जब रासायनिक हथियार बनाये और अपने विज्ञान का इस्तेमाल लोगों के कत्लेआम में किया तब आइंस्टीन उन चुनिंदा लोगों में से एक थे जिन्होंने इंसानी जिन्दगी को खत्म कर डालने के लिए विज्ञान के ऐसे विनाशकारी इस्तेमाल का विरोध किया और हेबर की कड़ी निंदा की। आइंस्टीन ने कहा कि तकनीक सम्बन्धी विकास पागलों के हाथ में कुल्हाड़ी के सामान है।

1955 में शीत युद्ध के दौरान आइंस्टीन और बर्ट्रेण्ड रस्सेल (ब्रिटिश दार्शनिक, गणितज्ञ, इतिहासकार और राजनीतिक कार्यकर्ता) ने अपील करते हुए एक मैनिफेस्टो जारी किया जिसमें उन्होंने दुनिया भर के लोगों से युद्ध के विरुद्ध खड़े होने का आहवान किया था। आइंस्टीन ने अपना पूरा जीवन विज्ञान को समर्पित किया और एक सच्चे वैज्ञानिक की तरह समाज में हो रहे अन्याय और शोषण के खिलाफ आवाज उठाई। अपने लेखों के जरिये उन्होंने लोगों को एक ऐसे समाज के निर्माण के लिए प्रेरित किया जहाँ चंद मुट्ठी भर लोग दूसरों को तकलीफ न पहुंचा सकें, जहाँ सभी को जीने का अधिकार हो। आइंस्टीन ने 1905 में जो वैज्ञानिक अनुसंधान पेश किया था जानते हो उसको सही साबित होने में कितने साल लगे ? आइंस्टीन की स्पेशल रिलेटिविटी के सिद्धांत को सही साबित होने में (तुम सिर्फ अभी इस सिद्धांत का नाम जान लो, यह क्या होता है और इसके क्या मायने हैं, इसके बारे में कभी आगे विस्तार में बात करेंगे) पूरे 15 साल लगे और इन 15 सालों में कई बार लोगों ने उन्हें गलत कहा मगर आइंस्टीन का विज्ञान पर भरोसा अडिग था।
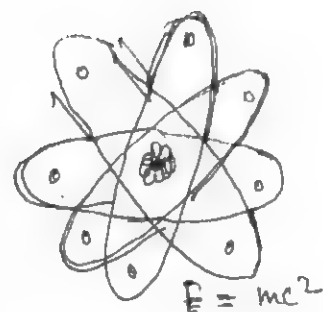
इसीलिए आज भी उनका नाम हमारे बीच जिंदा है। दुनिया कभी किसी क्लर्क को याद नहीं रखेगी मगर उस क्लर्क को कभी नहीं भूल पायेगी जो एक वैज्ञानिक बन गया और आइंस्टीन ठीक उसी वजह से हमारे बीच हमेशा रहेंगे। विज्ञान सिर्फ किताबों में लिखे नियमों या फिर परिकल्पनाओं, सिद्धांतों का नाम नहीं है, विज्ञान एक पद्धति, एक तरीका है जो संसार में हो रही सभी घटनाओं को समझने के लिए वैज्ञानिक नज़र देता है। आइंस्टीन ने इसी विज्ञान के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित किया।

(स्रोत : बाल पत्रिका "कोंपल")

मैं दिया हूँ! मेरी दुश्मनी तो सिर्फ
अँधेरे से हैं, हवा तो बेवजह ही
मेरे खिलाफ हैं।

–गुलजार

चटगाँव विद्रोह

भारत की आजादी की बात करते समय हम अक्सर गांधी, नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस को याद करते हैं और यह मानते हैं कि आजादी की लड़ाई केवल अहिंसा के दम पर लड़ी गई थी परन्तु यह पूरी सच्चाई नहीं है। ऐसे कई नाम और चेहरे हैं जो इतने प्रसिद्ध तो नहीं है लेकिन अंग्रेजों के खिलाफ वे जंग में उतरे और ब्रिटिश राज्य की चूलें हिला दीं। मास्टर सूर्यसेन और प्रीतिलता वादेदार ऐसी ही शख्शियत थे जिन्होंने चटगाँव में हथियारबन्द बगावत खड़ी की और अंग्रेजों को कुछ ही दिनों के लिए ही सही परन्तु वहां से भागने पर मजबूर कर दिया। पूरे देश के पैमाने पर ऐसी कई सशस्त्र बगावतें हुईं और अनग्नित नौजवानों, स्त्रियों और किशोरों ने कुर्बानियां दीं।

वह **18 अप्रैल 1930** का दिन था जब बंगाल के चटगाँव शहर में जो अब बंगलादेश में आता है, नौजवान क्रान्तिकारियों के दल ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह कर दिया और शस्त्रागार पर कब्जा कर लिया। इसके नेता थे– सूर्यसेन जिन्हें उनके साथी प्यार से मास्टर दा कहते थे। वे वरिष्ठ शिक्षक थे। इण्टरमीडिएट की पढ़ाई करते हुए वे बंगाल की प्रमुख क्रान्तिकारी संस्था 'अनुशीलन समिति' से जुड़ चुके थे। जब वे बी.ए. की पढ़ाई करने बहरामपुर कालेज गये तो प्रसिद्ध क्रान्तिकारी संगठन 'युगान्तर' के सम्पर्क में आये और उसके विचारों से काफी प्रभावित हुए। इसलिए चटगाँव वापस आकर उन्होंने युवाओं को संगठित करने के लिए 'युगान्तर पार्टी' की स्थापना की। अंग्रेजों के खिलाफ उनके और उनके साथियों के मन में नफरत की आग धधक रही थी परन्तु अंग्रेजों का मुकाबला करने के लिए धन और हथियार दोनों की जरूरत थी। अपनी ताकत को देखते हुए दल ने सरकार से गुरिल्ला युद्ध लड़ने का फैसला किया। हथियार खरीदने के लिए यह तय हुआ
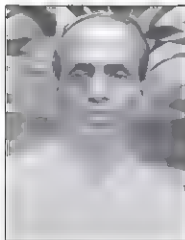
कि धन संग्रह किया जाये परन्तु यह काम सरकारी खजाना लूट कर ही किया जा सकता था। इसलिए दल के सदस्यों ने 23 दिसम्बर 1923 के दिन चटगाँव में दिन दहाड़े आसाम बंगाल रेलवे का खज़ाना लूट लिया। लूट से मिले कुल सत्रह हजार रुपये। कलकत्ता जाकर हथियार खरीदना तय हुआ। लेकिन पुलिस उनके पीछे लग चुकी थी। तमाम तरह की कठिनाइयां झेलते हुए दल के सदस्य कलकत्ता पहुंचे। दल के नेता मास्टर दा के साथ साथ दल के अन्य सदस्य अनन्त और अंबिका भी गिरफ्तार कर लिए गये और उन पर मुकदमा चलाया गया। चटगाँव के जिस पुलिस इंस्पेक्टर ने उन्हें गिरफ्तार किया था उसे प्रेमानंद दत्त ने, जो दल के सक्रिय सदस्य थे, कुछ ही दिनों के भीतर गोली मार दी। इस घटना से चटगाँव में बहुत हलचल मची। दल के गिरफ्तार सदस्यों पर कोई मामला नहीं बन पाया था और वे बेकसूर साबित होकर छूट गये।

क्रान्तिकारी कामों को ओर तेज करने के लिए मास्टर दा ने अपने साथियों के साथ मिलकर इंडियन रिपब्लिकन आर्मी (आई. आर. ए.) का गठन किया। मास्टर सूर्यसेन ही सर्वसम्मति से इसके नेता चुने गये। आई. आर. ए. के गठन से पूरे बंगाल में क्रान्ति की आग भड़क उठी। आर्मी ने लड़ाई की जो रणनीति तय की उसे देखकर लगता है कि उन्होंने हर चीज पर दूरंदेशी नजरिये से सोचा था। उनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार है : अचानक शस्त्रागार पर अधिकार करना; रेलवे की संपर्क व्यवस्था को नष्ट कर देना; टेलीग्राफ के तार काटना; सरकारी टेलीफोन बंद कर देना; बंदूकों की दुकानों पर कब्जा; अस्थायी सरकार की स्थापना; उसके बाद शहर पर कब्जा करके वहीं से लड़ाई के मोर्चे बनाना और मरते दम तक लड़ना।

इस क्रान्तिकारी आर्मी में मुख्य रूप से सूर्यसेन, अंबिका चक्रवर्ती, नरेश राय, शशांक दत्त, निर्मल सेन, अनन्त सिंह, आनन्द गुप्ता, लोकनाथ, हरिगोपाल, जीवन घोषाल आदि जैसे युवाओं के साथ प्रीतिलता और कल्पना दत्त जैसी युवतियां भी थी। चटगांव में दुश्मनों के दो मुख्य अड्डे थे असम बंगाल रेलवे बटालियन का हेडक्वार्टर और पुलिस लाइन हेडक्वार्टर। इसके साथ ही शहर में इंपीरियल बैंक,

जेल, कोतवाली आदि थे। बंदूक की एक बड़ी सी दुकान भी थी। तूफानी ढंग से शहर पर कब्जा करने के साथ ही साथ इन पर भी कब्जा करना योजना का अंग था।

ब्रिटिश सरकार के खिलाफ इस संघर्ष के लिए रात के आठ बजे, शुक्रवार, 18 अप्रैल 1930 का दिन तय किया गया। यह आयरलैण्ड की आजादी की लड़ाई के इतिहास में ईस्टर विद्रोह का दिन भी था। 18 अप्रैल 1930 को योजना के मुताबिक दो सैन्य दस्तों ने जिम्मेदारी संभाली। एक गणेश घोष के नेतृत्व में और दूसरा लोकनाथ की अगुआई में। गणेश घोष के दस्ते ने चटगाँव में पुलिस शस्त्रागार और लोकनाथ के नेतृत्व वाले दस्ते ने सहायक सैनिक शस्त्रागार पर कब्जा कर लिया। उन्हें वहां बन्दूकें तो मिलीं परन्तु उनकी गोलियां नहीं मिल पायीं। क्रान्तिकारियों ने टेलीफोन और टेलीग्राफ के तार काट दिये और रेलमार्गो को अवरुद्ध कर दिया। उन्होंने एक प्रकार से चटगाँव पर अधिकार कर लिया था। हुकूमत के नुमाइंदे भाग खड़े हुए। इस सेना ने अपने नेता सूर्यसेन को पुलिस शस्त्रागार के सामने सलामी दी। दल ने राष्ट्रीय ध्वज फहराया और भारत की सरकार स्थापित की। यह सरकार अस्थायी भले ही रही हो लेकिन कुछ दिनों के लिए तो इसने चटगाँव को अंग्रेजी शासन से मुक्त ही कर दिया था।

दल को यह अंदेशा था कि इतनी बड़ी घटना पर अंग्रेज सरकार भीषण कारवाई कर सकती है, इसलिए वे चटगाँव के पास की पहाड़ियों में जा छुपे और वहां से गुरिल्ला युद्ध छेड़ दिया। अपने युद्ध कौशल से उन्होंने दुश्मन को नाकों चने चबाने पर मजबूर कर दिया। अन्त में हजारों सैनिकों ने उन पहाड़ियों को घेर लिया लेकिन क्रान्तिकारियों ने हार नहीं मानी। उनके साहस और गुरिल्ला युद्ध में निपुणता का अंदाज़ा इसी बात से लग जाता है कि हथियारों से पूरी तरह लैस होने के बावजूद मरने वाले अंग्रेज सैनिकों की संख्या 80 थी जब कि शहादत देने वाले दल के सदस्यों की संख्या 12 थी। कुछ सदस्य पकड़ लिये गये लेकिन उनके नेता मास्टर दा अपने अन्य साथियों के साथ निकल गये। कई बार ऐसे मौके भी आये जब वे दुश्मनों से घिर गये लेकिन हर बार वे सुरक्षित बच निकले और अपनी गतिविधियों से सरकार की नाक में दम करते रहे। दमन और कठिनाइयां भी इन क्रान्तिकारी युवाओं को डिगा नहीं सकीं। उन्होंने बार बार अपने को संगठित किया और बगावत का झण्डा बुलन्द रखा। दल के ही एक गद्दार की मुखबिरी पर 16 फरवरी 1933 को मास्टर दा गिरफ्तार कर लिए गये। 12 जनवरी 1934 को उन्हें दल के एक ओर साथी के साथ फांसी दे दी गई। चटगाँव विद्रोह के बारे में भले ही बहुत लोग न जानते हों लेकिन इसने अंग्रेजी शासन को हिला दिया था, यह इतिहास में दर्ज है।

(स्रोत : बाल पत्रिका 'कोंपल')

बटोगे तो कटोगे

यकीनन!
बटोगे
तो कटोगे
ग़रीब अगर
जात-पात
धर्म-पंथ
में बटेगा
तो कटेगा
यकीनन कटेगा।

अंडाणी हो
अंबानी हो
बिल गेट्स
स्टीव
या हों
धर्म पंथ के
ठेकेदार
नहीं बटते
इसलिए
नहीं कटते
यकीनन
नहीं कटते।

-रंजीवन सिंह

(98150-68816)

तर्कशील लहर (वैज्ञानिक चेतना) को समर्पित थे-मास्टर बलवंत सिंह...

– सुमीत अमृतसर

समाज में कुछ ऐसे सजग और संघर्षशील व्यक्ति होते हैं जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण और मानवता की भावना रखते हुए समाज में लोकहितकारी सामाजिक और सांस्कृतिक बदलाव लाने के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित कर देते हैं। हरियाणा तर्कशील सोसाइटी के संस्थापक मास्टर बलवंत सिंह ऐसे ही प्रसिद्ध नेता थे जिन्होंने न केवल समाज से अंधविश्वास, भ्रम, रूढ़िवादी मान्यताओं, डेरावाद, नशाखोरी, मानसिक समस्याओं, नकली चमत्कारों और सामाजिक बुराइयों को खत्म करने के लिए वैज्ञानिक चेतना का प्रचार प्रसार किया बल्कि सिरसा के डेरा प्रमुख के खिलाफ हत्या के एक मामले में निडर गवाही देकर अपनी साहसिकता का परिचय भी दिया।

उनका जन्म 3 फरवरी 1955 को कुरुक्षेत्र जिले के संघोली (पिहोवा) गांव में हुआ। 1981 में मास्टर बलवंत सिंह छह महीने के अस्थायी आधार पर पंजाबी शिक्षक नियुक्त हुए। इस दौरान गियानी और स्नातकोत्तर की परीक्षा पास कर उन्होंने स्थायी शिक्षक बनने का निर्णय लिया।

1988 में हरियाणा तर्कशील सोसाइटी की स्थापना करने और उसका दायरा विस्तृत करने में संस्थापक सदस्य के रूप में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्हें इस बात का गहरा दुख था कि न केवल पढ़े-लिखे व्यक्ति बल्कि उच्च शिक्षा प्राप्त लोग भी पाखंडी बाबाओं, साधुओं, तांत्रिकों और ज्योतिषियों के चंगुल में फंसकर अपनी लूट करवाते हैं। ऐसे पाखंडी डेरों में महिलाओं का शारीरिक शोषण और हत्या तक हो जाती है।

वे न केवल तर्कशील लहर के प्रमुख और लोकप्रिय नेता थे बल्कि एक गंभीर, ऊर्जावान, मिलनसार और विद्वान शिक्षक भी थे। कठिन से कठिन परिस्थितियों में डटे रहने वाले तर्कशील नेता के रूप में उन्होंने शिक्षक आंदोलन और कर्मचारी ट्रेड यूनियनों में भी निडरता और समर्पण के साथ काम किया।

अपने जीवन के साढ़े तीन दशकों में उन्होंने पाखंडी बाबाओं, ज्योतिषियों, तांत्रिकों और नकली चमत्कारों का पर्दाफाश करने, मानसिक समस्याओं से पीड़ित लोगों को वैज्ञानिक सलाह देने और हिंदी ''तर्कशील पथ'' पत्रिका के संपादक के रूप में तर्कशील साहित्य का प्रकाशन और अनुवाद करने के लिए अपना जीवन समर्पित किया। उन्हें क्रांतिकारी और तर्कशील साहित्य पढ़ने का बड़ा शौक था और इसके लिए उन्होंने अपने घर में एक लाइब्रेरी भी स्थापित की हुई थी।

इस दौरान उन्होंने तर्कशील सोसाइटी हरियाणा में कई वर्षों तक राज्य सचिव, अध्यक्ष और वित्त सचिव के रूप में जिम्मेदारियां निभाईं और स्कूलों, कॉलेजों, गांवों, कस्बों, कारखानों और समाज के सभी वर्गों में अंधविश्वास और सामाजिक बुराइयों के खिलाफ जागरूकता अभियान चलाया।

उन्होंने तर्कशील लहर का दायरा विस्तृत करते हुए उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, हिमाचल, झारखंड, राजस्थान, उत्तराखंड, पंजाब और कई अन्य राज्यों में वैज्ञानिक चेतना के कार्यक्रम प्रस्तुत किए।

फेडरेशन ऑफ इंडियन रेशनलिस्ट एसोसिएशन के 2004 में बठिंडा में हुए राष्ट्रीय सम्मेलन में उन्होंने अपने हाथों से लोहे की सुइयां आर-पार कर हैरतअंगेज जादू ट्रिक प्रस्तुत की। अपने अंतिम समय तक वे हिंदी ''तर्कशील पथ'' पत्रिका के संपादक की जिम्मेदारियां निभाते रहे।

मास्टर बलवंत सिंह ने अपने फार्म हाउस पर मानसिक चेतना परामर्श केंद्र चलाते हुए अंधविश्वास, भूत-प्रेत और विभिन्न मानसिक समस्याओं से ग्रसित हजारों रोगियों को मुफ्त वैज्ञानिक काउंसलिंग देकर स्वस्थ किया और उन्हें तर्कशील साहित्य पढ़ने और जीवन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित किया।

मास्टर बलवंत सिंह की जिंदगी की सबसे अहम उपलब्धि यह थी कि उन्होंने सिरसा डेरे के मुखिया गुरमीत राम रहीम के खिलाफ चल रहे साध्वियों से दुष्कर्म और रंजीत सिंह हत्या केस में पूरी निडरता से गवाही दी, जिसके चलते डेरा मुखिया को पंचकूला की सीबीआई अदालत ने 2017 में उम्रकैद की सजा सुनाई।

10 जुलाई 2002 को जब रंजीत सिंह की हत्या की गई,

उसके तुरंत बाद हत्यारों ने मास्टर बलवंत सिंह को मारने की योजना बनाई, लेकिन घर पर न मिलने के कारण उनकी जान बच गई। उन्हें गवाही देने से रोकने के लिए करोड़ों रुपये का लालच दिया गया और जान से मारने की धमकियां दी गईं। इसके अलावा उन पर कई बार जानलेवा हमले भी करवाए गए। अपनी जान की परवाह किए बिना वे बीस वर्षों तक अदालतों और थानों में पेशियां भुगतते रहे और एक ताकतवर अपराधी को सजा दिलाने के लिए अपनी जिम्मेदारी बखूबी निभाई।

हरियाणा में अस्थायी और बेरोजगार शिक्षक संघ को सक्रिय करने में मास्टर बलवंत सिंह ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी अथक सेवाओं और समर्पित भावना के कारण वे अस्थायी शिक्षक संघ के महासचिव और फिर कुरुक्षेत्र इकाई के सचिव चुने गए। 1985 में वे बेरोजगार शिक्षकों की समस्याओं के समाधान के लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी से मिलने वाले प्रतिनिधिमंडल का हिस्सा भी बने।

मास्टर बलवंत सिंह ने 1991 में हरियाणा साक्षरता अभियान में भी सक्रिय भूमिका निभाई और शिक्षक साथियों तथा कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए कई संघर्ष किए। वे 28 फरवरी 2013 को मुख्य शिक्षक के पद से सेवानिवृत्त हुए।

उन्होंने 2020 21 में चले ऐतिहासिक किसान आंदोलन के दौरान अपने परिवार और तर्कशील साथियों सहित पूरी सक्रियता से हिस्सा लिया और हजारों किसानों तक तर्कशील साहित्य पहुंचाया। तर्कशील लहर में साढ़े तीन दशकों का महत्वपूर्ण योगदान और डेरा मुखिया के खिलाफ निर्भीक गवाही देने के कारण उन्हें तर्कशील सोसाइटी पंजाब सहित कई अन्य सामाजिक संगठनों द्वारा सम्मानित किया गया। मास्टर बलवंत सिंह पिछले वर्ष 31 जनवरी 2024 को ब्रेन हैमरेज के कारण वे हमारे से सदा के लिए बिछड़ गए। चार साल पहले भी उन्हें इसी बीमारी के कारण अस्पताल में रहना पड़ा था, लेकिन स्वस्थ होने के बाद उनकी तर्कशील गतिविधियां जारी रहीं। उनकी इच्छा के अनुसार उनके परिवार ने उनका पार्थिव शरीर एक फरवरी को मेडिकल कॉलेज कुरुक्षेत्र को प्रदान कर दिया। इस तरह वे जहां जीवन भर वैज्ञानिक चेतना का प्रचार प्रसार करते रहे, वहीं मृत्यु के बाद भी अपना शरीर चिकित्सा अनुसंधान के लिए प्रदान कर एक महत्वपूर्ण संदेश दिया।

उनके निधन से हरियाणा ही नहीं बल्कि समूची राष्टीय स्तर की तर्कशील लहर को एक बड़ा नुकसान हुआ है। भले ही वे शारीरिक रूप से हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन हरियाणा और राष्टीय तर्कशील लहर के विकास में उनके योगदान को हमेशा याद किया जाता रहेगा।

राज्य मीडिया प्रभारी
तर्कशील सो. पंजाब
अनुवादः अजायब जलालाना

मार्च-अप्रैल की कुछ महत्वपूर्ण तिथियाँ

8 मार्च : अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस

23 मार्च (1931) शहीदे आज़म भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव ने आज़ादी के लिए इस दिन हँसते हँसते फाँसी का फन्दा चूमा था। इसे ही दिन (1988) को पंजाब के क्रान्तिकारी कवि **अवतार सिंह 'पाश'** खालिस्तानी आतंकवादियों के हाथों शहादत प्राप्त कर गये थे।

25 मार्च (1931) महान राष्ट्रवादी पत्रकार **गणेश शंकर** विद्यार्थी इस दिन साम्प्रदायिक दंगों को रोकने की कोशिश में शहीद हो गये थे।

28 मार्च (1868) विश्व प्रसिद्ध महान लेखक **मक्सिम गोर्की** का जन्मदिवस

8 अप्रैल (1857) 1857 के स्वाधीनता संग्राम के प्रथम विद्रोही मंगल पाण्डे को ब्रिटिश हुकूमत द्वारा फाँसी

8 अप्रैल (1929) 'बहरों को सुनाने के लिए धमाके की जरूरत होती है'। इस उद्घोष के साथ भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली की सेंट्रल असेम्बली में बम फेंका

9 अप्रैल (1893) महान लेखक राहुल सांकृत्यायन का जन्म दिवस

13 अप्रैल (1893) जालिम रौलट एक्ट के विरोध में अमृतसर के जालियाँवाला बाग में शान्तिपूर्ण सभा कर रहे लोगों पर ब्रिटिश फौज के जनरल डायर ने अंधाधुंध गोलियां चलवाईं जिससे सैंकड़ों स्त्री पुरुष व बच्चे मारे गये। इस दिन को जगह जगह दमन विरोधी दिवस के रूप में मनाया जाता है।

14 अप्रैल (1963) महान लेखक राहुल सांकृत्यायन की पुण्यतिथि

18 अप्रैल (1930) : चटगाँव विद्रोह। बंगाल (अब बंगलादेश) के चटगाँव शहर में मास्टर सूर्यसेन के नेतृत्व में तरुण क्रान्तिकारियों के दल ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह कर दिया और शस्त्रागार पर कब्जा कर लिया।

22 अप्रैल (1870) रूसी क्रान्ति के महान नेता व्लादिमीर इलिच लेनिन का जन्मदिवस

बच्चों के लिए अर्थशास्त्र (मार्क्स की 'पूँजी' पर आधारित पाठ)

वस्तु-विनिमय की समस्याएँ

– रंगनायकम्मा

वस्तु विनिमय का मतलब है किसी एक वस्तु या किसी एक काम को दूसरी किसी वस्तु या दूसरे किसी काम के बदले स्वीकार करना। कमी-कभी वस्तु-विनिमय के चलते कई सारी दिक्कतें भी खड़ी हो जाती है। आइए, एक उदाहरण देखते हैं।

श्याम के जूते पुराने हो चुके हैं और घिस-फट चुके हैं। असुविधा होने पर भी वे किसी तरह उन्हीं जूतों से काम चला रहे थे। एक दिन समय मिलने पर वे अपना नया घड़ा साथ लेकर सोमदास जूते वनाने वाले के पास चले गये और हमेशा की तरह बोले, ''मुझे जूतों की एक जोड़ी दे दो, सोमदास।''

सोमदास मुस्कराये और बोले, ''इस वक्त हमें घड़े की जरूरत नहीं है, श्याम। हमारे पुराने घंटे अभी ठीक है।''

श्याम भी मुस्कराये और बोले, ''अभी तुम्हें इसकी जरूरत नहीं है? ऐसा, क्या? कोई बात नहीं। मुझे बताओ, तुम्हें क्या चाहिए। मैं तुम्हारे लिए वही ला दूँगा और तुम्हारे जूते ले जाऊँगा।''

''क्या चाहिए हमें? में अभी गुड़ लाने के लिए बाहर जाने ही वाला था। मेरी पत्नी ने कहा था कि सुबह चली जायेगी। उसे पूछता हूँ कि वह गयी तो नहीं। जय रुको।'' सोमदास अपनी पत्नी को आवाज देने ही वाले थे कि वे खुद चली आयी। ''कैसे जाती में? अपने कामों से फुर्सत मिलती तभी तो। सोच रही थी कि चने उबाल दूँ, फिर चली जाऊँ''-वह चोली।

शाम ने फर्श पर रखा अपना घड़ा उठा लिया और राजा-खुशी खड़े होते हुए कहा, ''कोई बात नहीं। अब आपको जाने की क्या जरूरत है? मैं गुड़ ला दूँगा और जूते ले जाऊँगा। अभी आता हूँ पल भर में।'' ऐसा करते हुए वे तेज कदमों से निकल पड़े गुड़ बनाने वाले अब्दुल की तरफ।

''अब्दुल! यह ले लो घड़ा और मुझे दे दो गुड़! मैं दरअसल सोमदास के पास गया था जूतों के लिए। मगर उसे घड़े की जरूरत नहीं थी, उसे गुड़ चाहिए था। मैंने कहा, मैं ला देता हूँ गुड़। इसीलिए यहाँ आ गया हूँ। मुझे गुड़ ले जाकर सोमदास को देना है और जूते ले लेने हैं। अब्दुल, क्या कहूँ? जब से ये जूते फट गये है, बड़ी आफत आ गयी है। मिट्टी खोदने के लिए जाता हूँ तो वहाँ बहुत सारे काँटे होते हैं। जूते न हों, तो सचमुच बड़ा मुश्किल हो जाता है। जल्दी से मुझे गुड़ दे दो, ताकि मैं चलूँ। मिट्टी का अभी बहुत सारा काम बचा है मेरा,'' वे बिना रुके बोलते गये।

अब्दुल गुड़ बनाने वाले का हाव-भाव असहज-सा लग रहा था। ''क्या बताऊँ, श्याम? कल ही मेरी बीवी तुम्हारे छोटे भाई के यहाँ से दो घड़े और दो बर्तन ले आयी है'' यह कहा।

श्याम अब जरा चिन्तित हो उठे। ''तुम्हें भी घड़े की जरूरत नहीं? हे राम, अव में क्या करूं? सोचा था जल्दी लौट जाऊँगा। ठीक है, बताओ, तुम्हें अय क्या चाहिए? मैं ला दूँगा तुम्हारे लिए, सोमदास के लिए गुड़ ले जाऊंगा, जूते पहन लूँगा ओर चल दूँगा अपने घर। जल्दी बताओ, ऐसा क्या है जो तुम चाहते हो?''

''अजी, सुनो तो...'' अब्दुल ने प्यार से अपनी बीवी को आवाज दी। ''तुम्हें कुछ झाडूवाडू चाहिए थी, न? तुम्हारे लिए मँगवा लूँ क्या?'' यह पूछा।

वे नये झाडू से हो बुहारते हुए और उसकी ओर इशारा करते हुए आयीं और कहने लगीं, ''कल ही मैं ले आयी हूँ इसे। पर मुझे एक छोटे अनाज छटकने वाले सूप की जरूरत है। पुराने वाले में छेद हो गये हैं। भाई श्याम, तुम मेरे लिए ले ही आना सूप।''

श्याम ने तुरन्त अपना घड़ा उठा लिया। ''ठीक आपको सूप चाहिए? कोई बात नहीं। ला दूँगा मीरा दीदी से। अब्दुल, जरा मेरे लिए गुड़ तौल कर तैयार रख देना। मुझे जल्दी से अपने घर लौट जाना होगा,'' यह कहते हुए वे चलने लगे तुरन्त और दहलीज पार कर दी।

पीछे से अब्दुल चिल्लाए, ''अरे सुनो, श्याम! ऐसा करो, तुम गुड़ ले जाओ और उठा लो जूते। सूप के बारे में हम कल सोच लेंगे।''

''कोई बात नहीं, कल फिर क्यों इसके लिए चक्कर

काटूँ? सूप लेकर मैं झट से लौट आता हूँ। नहीं क्या?'' ऐसा कहते हुए श्याम अपने पाँव के घाव के कारण लँगड़ाते लंगड़ाते किसी तरह मीरा दीदी के यहां जा पहुँचे।

जल्दी जल्दी में उन्होंने अपना दुखड़ा सुना दिया। ''देखो, मीरा दीदी, कैसे फट गये हैं मेरे जूते और कैसे घाव हो गये हैं मेरे पाँवों में। ज़मीन पर पाँव रखना भी दूभर हो गया है। मुझे तुम्हारे यहां से सूप ले जाना है और गुड़ वाले को देना है, उसका गुड़ लेना है और जूते बनाने वाले को देखा है। तब कहीं मैं अपने लिए जूते ले जा पाऊँगा। देखना मीरा दीदी, मेरे लिए एक मजबूत सूप निकाल देना। बड़ी देर से चक्कर काट रहा हूँ। अब जल्दी जाना होगा। घर में बहुत काम पड़ा है'', यह कहते हुए श्याम पास के मेड़ पर उकड़ूँ बैठ गये।

श्याम जब अपनी व्यथा सुना रहे थे तो मीरा दीदी हमदर्दी से सुन रही थीं। ''हाय, जूते भी नहीं मिल पाये तुम्हें'' बड़बड़ाने लगीं। फिर स्नेह के साथ समझाने लगी, ''अरे श्याम, घड़े से पानी पीना तो हमने बहुत पहले ही बन्द नहीं कर दिया, क्या? घर के सारे लोगों को दमे की तकलीफ नहीं होने लगी थी क्या? मेलाराम वैद्यजी ने हम सबको हिदायत दी कि ठण्डा पानी मत पीओ। तब से हमने सारे घड़े उठाकर ऊपर दुछती पर रख दिये हैं। नये घड़े का हम क्या करेंगे अब? फिर भी तुम यह सूप ले जाओ, तुम्हें इसकी जरूरत है; हिसाब बाद में कर लेंगे।''

श्याम उनकी बातें सुनते-सुनते ओर भी चकरा गये। ''तुम्हें भी नहीं चाहिए घड़ा? घड़े इस्तेमाल करना ही बन्द कर दिया। अब क्या होगा? फिर मुझे जूते कैसे मिल पायेंगे? तुम से अभी मैं सूप ले भी लूँ तो बाद में क्या दे पाऊँगा? तुम लोगों ने घड़े इस्तेमाल करना ही बन्द कर दिया है! बहुत खूब! अब.... बताओगी मुझे, कि तुम्हें किस चीज की जरूरत हैं?.... नहीं, अब मैं घर ही चलता हूँ। कब तक घूमता रहूँगा इस तरह?'' ऐसा कहते हुए श्याम ने घड़ा अपने एक कन्धे पर रख लिया और मुड़ कर वापस चल दिया।

इतने में मीरा दीदी ने अपने सामानों में से एक बड़ा सा सूप निकाला और पेश किया, ''ले लो इसे, श्याम।''

''नहीं दीदी! मैं तुम्हें बाद में क्या दूँगा?'' यह कहते हुए श्याम वहाँ से निकल पड़े, लँगड़ाते हुए और दुखी दुखी से। श्याम की समस्या क्या थी? उनको जिस वस्तु की जरूरत थी वह नहीं मिली। ऐसी स्थिति श्याम के ही सामने नहीं, हर किसी के सामने कभी न कभी आ ही जाती थी। यही है वह समस्या जो वस्तु विनिमय की प्रणाली में खड़ी हो जाती है। फिर इसके लिए समाधान क्या है?

लो, पैसे आ गये!

पहला ही पाठ हमने इस सवाल से शुरू किया था कि पैसा क्या होता है? अब हम 'पैसों' को देखेंगे।

'वस्तु विनिमय की प्रणाली' में, जहाँ विनिमय वस्तुओं के ही बीच होता हो, ऐन मौके पर अपनी जरूरत की कोई वस्तु मिल भी सकती है और नहीं भी मिल सकती। इस समस्या का समाधान क्या होगा ?

समाधान बहुत पहले ढूँढ लिया गया था जब 'पैसे' आ गये थे तभी! पैसे इस बात से आश्वस्त करा देते हैं कि हर वस्तु हर समय उपलब्ध हो। मतलब यह कि पैसे वस्तु विनिमय की समस्याओं को आसानी से हल करा देते हैं।

तो फिर यह 'पैसा' होता क्या है? उसका जन्म कैसे हुआ? विनिमय की समस्याओं को यह कैसे हल कर लेता है। इन सभी मसलों को हमें एक एक कर देखेंगे।

'पैसा' भी एक वस्तु है। मगर यह ऐसी वस्तु है जिसका कोई स्वाभाविक उपयोग-मूल्य नहीं होता। यही है पैसों की खास बात। पैसे मिट्टी, कपास या लकड़ी से नहीं बनते। सोने के धातु से बनते हैं। पैसा एक खास तरह का छोटा, गोल सिक्का होता है। इस सिक्के पर देश विशेष के शासक की आकृति और कुछ अक्षरों की नक्काशी होती है। ऐसा एक सिक्का। ऐसा एक सोने का सिक्का। दूसरी कोई वस्तु इस तरह नहीं होती। इस सिक्के को कुछ कहा जाता है। 'रुपया'। यह 1 रुपये का सिक्का है।

इस पैसे का जन्म कैसे हुआ? इसका जन्म विनिमय सम्बन्धों के बीच से और विनिमय की जरूरतों के लिए ही हुआ। धरती के भीतर आजकल तो कोयला और तेल जैसे पदार्थ पाये जाते हैं। नहीं? इसी तरह पुराने जमाने में लोगों ने धरती के भीतर सोना और चाँदी जैसे धातुओं के होने का पता लगा लिया था। लेकिन कोई भी धातु उतनी प्रचुर मात्रा में नहीं होता जितना कि कोयला। 'सोना' तो बिल्कुल नहीं। मान लें कि 1 किलो कोयला खोद निकालने के लिए 2 घण्टे का श्रम लगता हो। उतने ही वज़न का सोना खोद निकालने के लिए हजारों गुना ज्यादा श्रम लगता होगा। मतलब यह कि सोने का मूल्य उतने ही वजन के कोयले से

कहीं ज्यादा होगा। श्रम ज्यादा लगता है, इसीलिए मूल्य ज्यादा होगा।

इससे पहले के पाठों में हमने यही देख है न, कि कोई वस्तु तब बनती है जब कुदरती पदार्थों पर तरह तरह के श्रम किये जाते हैं। सोने के साथ भी यही होता है। धरती में मौजूद सोने का खनिज कुदरती पदार्थ ही है। उसका कोई मूल्य नहीं होता। सोना निकालने से लेकर किसी सांचे में ढालने तक तरह तरह के श्रम करने पड़ते हैं। पिछले पाठों में हमने यह भी देखा कि किसी वस्तु का मूल्य उसके पदार्थ का नहीं, बल्कि तमाम तरह के उस श्रम का होता है जो इस वस्तु को बनाने में लगता हो। सोने के मूल्य पर भी यही बात लागू होती है। सोने का मूल्य उसके शरीर में मौजूद कुदरती पदार्थ का नहीं होता। उसका मूल्य कुदरती पदार्थ पर एक के बाद एक किये जाने वाले तमाम तरह के श्रम का मूल्य होता है।

जब सोने की खोज हुई, तो पैसे के सिक्के एकदम शुरू में नहीं बने। शुरू-शुरू में माला, चूड़ी, अंगूठी जैसी चीजें बनीं। सिर्फ जेवरात ही बनते थे, पैसों के सिक्के नहीं बनते थे।

सोना भी एक वस्तु है, इसलिए सोने के छोटे-छोटे टुकड़ों और अन्य वस्तुओं के बीच अदला-बदली होती थी। ये वस्तु-विनिमय के रूप में होने वाले विनिमय थे। कोई कुर्सी देता और बदले में कुर्सी के ही मूल्य के बराबर सोने का छोटा सा टुकड़ा लेता। इस तरह किसी के पास सोने के चार टुकड़े हो जाते, तो उसके जेवर बनवा लेता। कम्बल या कुछ अनाज देकर सोने के टुकड़े मिल जाते। सोने का कोई टुकड़ा देकर गाय मिल जाती।

जरूरत न होने पर कोई सोना नहीं लेता था। उसके साथ उन दिनों विनिमय नहीं होता था। घड़ें की जरूरत न होने पर उसका भी तो विनिमय न हो पाता था। नहीं? सोना साथ भी ऐसा ही था।

जिस दौरान सोने के टुकड़े और सोने जेवरात होते थे, हम कल्पना कर सकते हैं कि सोने के सिक्के भी रहे होंगे। जिस तरह 'पैसा' शब्द का जन्म हुआ, उसी तरह 'बेचना-खरीदना, दाम-माल' जैसे नये शब्द भी सामने आये।

आइए, अब देखें कि पैसे के सिक्के के साथ क्या होता था।

श्याम कुम्हार को जूतों की जरूरत है। मगर अब सीधे सोमदास जूते बनाने वाले के पास नहीं जाते। पहले वे उस व्यक्ति के पास जाते हैं जिसके पास पैसों के सिक्के हों। मान लें कि लालजी के पास पैसों के सिक्के हों और उन्हें अपने घर के लिए घड़े की जरूरत हो। (लालजी के पास पैसों के सिक्के कैसे आ गये यह हम बाद में समझ लेंगे। अभी इस बार में हम इतना ही जान लें कि कुछ लोगों के पास पैसों के सिक्के होते हैं।) मान लें कि श्याम अपना घड़ा लेकर लालजी के पास जाकर कहते हैं, "मैं तुम्हें यह घड़ा वेच दूंगा। क्या तुम इसे खरीदोगे?" लालजी को घड़े की जरूरत है। इसलिए वे जवाब देते हैं, "हाँ, मैं खरीद लूँगा। इसका दाम क्या है?"

"दाम? वह तो तुम जानते ही हो। एक रुपया" श्याम कहते हैं।

"एक रुपया? कोई छूट नहीं?" लालजी पूछ बैठते हैं।

"तुम तो भले आदमी हो, लालजी! तुम्हारा मोल भाव करना अजीव लगता है!" श्याम मुस्कराते हैं।

"ठीक है फिर, दे ही दो। घड़ा सही तो है न? कोई छेद या दरार न हो, लालजी यह कहते हुए घड़ा लेकर अन्दर से पूरा जाँच लेते हैं। घड़ा अपने बगल में रख कर वे अपने कमरबन्द से छोटी-सी पोटली खोलकर उसमें से एक सिक्का निकाल लेते हैं।

"लो यह एक रुपया।" यह कहते हुए वे सिक्का श्याम के हाथ में रख देते हैं।

सिक्का हाथ में लेते ही श्याम उसे अपनी दोनों आँखों पर रखते हैं और फिर अपने कमरबन्द में रख, कपड़े को घुमा-घुमा कर कस देते हैं कि सिक्का कहीं गिरने न पाये। "अब मैं चलता हूँ लालजी!" कहते हुए वे मुस्कराते हुए चल देते हैं।

यह श्याम कुम्हार और लालजी सिक्के वाले के बीच क्या हुआ? श्याम के घड़े और लालजी के पैसे के सिक्के के बीच विनिमय हुआ है। मतलब यह है कि घड़े का उतना ही मूल्य है जितना पैसे के सिक्के का! इसीलिए इनका परस्पर विनिमय हो पाया है।

श्याम ने घड़ा बेचा और पैसा पाया।

लालजी ने घड़ा खरीदा और पैसा दिया।

अगर हम यह जान चुके हों कि "पैसे का मतलब है सोने का सिक्का," तो इसका यह मतलब नहीं कि हम पैसे के बारे में सब कुछ जान गये हों।

शेष पृष्ठ 24 पर

ब्रह्माण्ड से हमारा गहरा नाता

– आशिष महाबल

हमारा आसपास किस्म-किस्म की चीज़ों से बना है। पेड़, जीव-जन्तु, पत्थर, इमारतें, लोहा नमक, चॉक, वगैरह-वगैरह। लिस्ट लम्बी है। ये सभी चीज़ें अलग-अलग तत्वों (एलिमेंट्स) से बनी हैं। हवा में मौजूद गैसों भी या तो खुद तत्व हैं या कार्बन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन जैसे तत्वों के मिलने से बनी हैं। लोहा तत्व है और नमक में पाए जाने वाला सोडियम भी। और चौंक का कैल्शियम भी।

स्कूल में हमने पढ़ा था कि दसियों-लाख साल तक ज़मीन में दबे रहे पेडों से ही कोयला (कार्बन) मिलता है। और यह भी कि सोना और लोहा खदानों से मिलता है। पर तब यह पूछने का ख्याल नहीं आया कि ये वहाँ पहुँचे कैसे कि अब खुदाई में मिल रहे हैं। तो इसी पर ठहरकर बात करते हैं।

सूरज एक सामान्य तारा है यानी न तो बहुत भारी और न बहुत हल्का। हमें ऊर्जा सूरज से मिलती है। इसका 98% हाइड्रोजन और हीलियम से बना है। ये सबसे हल्के तत्व हैं। सूरज में हीलियम तब बनता है, जब हाइड्रोजन में बहुत ऊँचे तापमान और दबाव के कारण संलयन (फ्यूज़न) देता है। इस प्रक्रिया से निकलने वाला प्रकाश पृथ्वी तक पहुँचता है। पिछले 4.6 अरब सालों से सूरज में हाइड्रोजन से हीलियम में तब्दील होने की प्रक्रिया चल रही है। और आने वाले पाँच अरब सालों तक चलती रहेगी।

हाइड्रोजन के पूरी तरह से हीलियम में बदल जाने के बाद सूरज का सिकुड़ना शुरू हो जाएगा। इससे तापमान बहुत बढ़ जाएगा। और किसी चरण में हीलियम का फ्यूज़न शुरू हो जाएगा। तब सूरज एक विशाल लाल गोले में तब्दील होगा और हो सकता है पृथ्वी को ही निगल जाए। हीलियम के फ्यूज़न के दौरान ही कार्बन जैसे तत्व बनते हैं।

अब सवाल यह है कि धरती पर जो कार्बन है, वह कहाँ से आया?

धरती जाने वाले ऑक्सीजन, लोहा, एल्युमीनियम जैसे दूसरे तत्वों की तरह कार्बन भी पुराने सदी के तारों की देन है। तारे भी इंसानों की तरह जन्मते हैं, मरते हैं।

तारों की आयु उनके आकार और द्रव्यमान (मास) पर निर्भर करती है। छोटे तारे जिनका द्रव्यमान हमारे सूरज से कम होता है, बहुत लम्बा जीते हैं। कई-कई अरब साल तक। सूरज जैसे मध्यम आकार के तारे लगभग दस अरब साल तक ज़िन्दा रहते हैं और अन्त में श्वेत बौने (व्हाइट ड्वार्फ) में बदल जाते हैं। बहुत ज्यादा द्रव्यमान वाले बड़े तारे तेज़ी से अपनी ऊर्जा खत्म कर लेते हैं और जल्दी मर जाते हैं। उनकी मौत विस्फोट के रूप में होती है। इसे सुपरनोवा कहते हैं। जब तारों में हीलियम का फ्यूज़न पूरा हो जाता है तब वे ओर भारी तत्व जैसे ऑक्सीजन, कैल्शियम, सोडियम, लोहा आदि बनाते हैं। जो तारे सुपरनोवा बनते हैं उनमें विस्फोट के वक्त बहुत ऊँचे तापमान के कारण सोना बनाने की भी क्षमता होती है।

पृथ्वी पर जो भी सोना है, वह किसी पुराने विशाल तारे के विस्फोट से आया है। जबकि कैल्शियम, सोडियम, लोहा बड़े तारों में फ्यूज़न से बनते हैं। द्रव्यमान के हिसाब से देखें तो पृथ्वी पर सबसे ज़्यादा लोहा (32.1%) है। ऑक्सीजन 30.1%, सिलिकॉन 15.1% और मैग्नीशियम 13.9% है। कुल मिलाकर पृथ्वी पर मौजूद तत्वों का 91% इन्हीं से है। इनमें से ऑक्सीजन ही सूरज जैसे तारों में बनी हो सकती थी। पर सूरज अभी इतना कमउम्र है कि इतनी सारी ऑक्सीजन बना पाना उसके बस में नहीं।

हमारे शरीर में हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन को शरीर के अलग-अलग हिस्सों तक पहुँचाता है। हीमोग्लोविन में लोहा होता है।

दिलचस्प बात यह है कि ये लोहा भी किसी पुराने तारे के अन्दर बना था। प्रसिद्ध वैज्ञानिक कार्ल सागन ने अपने टीवी शो 'कॉसमॉस: ए पर्सनल वॉयज' में कहा था :

ब्रह्माण्ड हमारे भीतर है। हम तारों के रज से बने हैं। ब्रह्माण्ड का खुद को जानने का बस एक ज़रिया हैं हम।

तो क्यों न हम भी ब्रह्माण्ड के जरिए खुद को जानें। जानें-सोचें कि जो दिख रहा है उसके पार क्या-क्या है? कहाँ तक है? आज तक जो हम जान पाए हैं वो किसी की सोच और प्रयोगों का नतीजा ही है।

इसी बात पर हम अपने सौरमण्डल को जान लेते हैं। सौरमण्डल यानी हमारे सूरज का परिवार। इनमें पृथ्वी, बृहस्पति और नैप्च्यून जैसे ग्रह हैं। कई ग्रहों के अपने चाँद हैं जो इनके चक्कर काट रहे हैं। एस्ट्रॉएड्स और कॉम्ट्स हैं जो सूरज की परिक्रमा कर रहे रहे हैं। इंसान चांद और मंगल के अलावा एक एस्ट्रॉएड पर भी अपना यान भेज चुका है। दो यान दसियों साल से यात्रा करते हुए अब सौरमण्डल के बाहरी हिस्से के करीब पहुँचे हैं। और वहाँ की जानकारी भेज रहे हैं।

कुछ एस्ट्रॉएड्स गुरुत्वाकर्षण के कारण पृथ्वी की ओर खिंचे आ सकते हैं। अगर ये आकार ने बड़े हों तो पृथ्वी को काफी नुकसान भी पहुँचा सकते है। कई वैज्ञानिकों का मानना है कि 6 करोड़ पचास लाख साल पहले ऐसे ही किसी हादसे से डायनासरों का पृथ्वी से खात्मा हो गया था। इसलिए हमारे वैज्ञानिक एस्ट्रॉएड्स पहचानने और उनकी सूची बनाने में लगे हैं। हाल में एक प्रयोग (डार्ट) के दौरान हमने जानबूझकर एक यान को एक छोटे एस्ट्रॉएड से टकरा दिया। ये एक दूसरे एस्ट्रॉएड के साथ घूम रहा था। प्रयोग का मकसद यह देखना था कि एक खास मात्रा में ऊर्जा के इस्तेमाल का क्या असर होता है ताकि पृथ्वी की तरफ आते एस्ट्रॉएड की कक्षा (ऑर्बिट) बदली जा सके।

सूरज में भी छोटे बदलाव होते रहते हैं। खासकर उसके मैग्नेटिक फील्ड में। लगभग हर ग्यारह साल में सूरज से आवेशित कणों के फव्वारे छूटते हैं। इनके पृथ्वी तक पहुँचने पर ध्रुवीय क्षेत्र (नॉर्दन लाइट्स) में सुन्दर प्रदर्शन को देखा जाता है। इन दिनों नज़ारा दिखाई दे रहा है। पृथ्वी के पास के ऐसे बदलाव अन्तरिक्ष मौसम कहलाते हैं। इन फव्वारों के कारण सैटेलाइट से कम्युनिकेशन में बाधा आ सकती है।

हमारी आकाशगंगा में सौरमण्डल के बाहर ओर भी तारे हैं। और हमारी आकाशगंगा की तरह अन्तरिक्ष में खरबों आकाशगंगाएँ हैं। इनके बारे में हम आगे भी जानते रहेंगे। तब तक क्यों न हम अपने आसपास के तत्वों के बारे में ओर खोज कर देखें? पता लगाएँ कि हम किस-किस तरह से ब्रह्माण्ड से जुड़े हैं।

अनुवाद : दिव्या

पृष्ठ 22 का शेष

सवाल और जवाब

1. 'पैसा' क्या होता है?

जवाब : हम अभी इतना ही जानते हैं कि पैसा भी श्रम से बनी कोई चीज होती है और वह सोने से बना एक सिक्का है। इससे ज्यादा नहीं जानते।

2. 'बेचना' क्या होता है? 'खरीदना' क्या होता है?

जवाब-'बेचने' का मतलब है कोई वस्तु देना और पैसे लेना। 'खरीदने' का मतलब है पैसे देना और वस्तु लेना।

3. किसी वस्तु और पैसे के बीच विनिमय हो रहा है। खरीदने का काम कौन कर रहा है? बेचने का काम कौन कर रहा है?

जवाब-जो व्यक्ति वस्तु देता है वह बेचता है। जो व्यक्ति पैसे देता है वह खरीदता है।

4. श्याम कुम्हार के पास 1 रुपया है। ये पैसे उनके पास कैसे आये?

जवाब-श्याम को ये पैसे अपना बनाया हुआ घड़ा बेचने पर मिले हैं।

5. 'दाम' क्या होता है? क्या यही मूल्य है?

जवाब हाँ। मूल्य का ही दूसरा नाम 'दाम' है। पर जब हम दाम की बात करते हों, तो इससे यह पता चलता है कि विनिमय दो वस्तुओं के बीच नहीं, बल्कि एक वस्तु और पैसे के बीच हुआ है।

6. कोई अगर घड़ा देता है और बदले में जूते पाता है, तो क्या इसका यह मतलब नहीं कि घड़ा बेचा गया है और जूते खरीदे गये हैं?

जवाब-हाँ, इसका यही मतलब है। लेकिन वस्तु-विनिमय की प्रणाली में 'बेचने' और 'खरीदने' जैसे शब्द नहीं होते। ये शब्द तभी आ पाये जब वस्तुओं का पैसों के साथ विनिमय होने लगा।

(स्रोत : पुस्तक ''बच्चों के लिए अर्थशास्त्र'' - रंगनायकम्मा)

अनुसंधान

हार्ट संबंधी बीमारियों के खतरे को बढ़ाता है फैटी मसल्स

हृदय रोग के जोखिम का सटीक मूल्यांकन करने के लिए सिर्फ बी.एम.आइ. और कमर की माप पर्याप्त नहीं है। एक शोध में कहा गया है कि जिन लोगों के मसल्स में फैट जमा होता या फैटी मसल्स हैं उनमें दिल का दौरा पड़ने और हार्ट फेल होने का खतरा अधिक होता है। यह अध्ययन यूरोपीय हार्ट जर्नल में प्रकाशित हुआ है। अध्ययन से पता चला है कि जिन लोगों के मसल्स में अधिक मात्रा में फैट जमा होता है, उनमें हार्ट से जुड़ी छोटी रक्त वाहिकाओं कोरोनरी माइक्रोवास्कुलर डिस्फंक्शन को नुकसान होने की आशंका अधिक होता है।

शोधकर्ताओं ने पाया कि जिन लोगों में इंटरमस्क्यूलर फैट का उच्च स्तर था और कोरोनरी माइक्रोवास्कुलर डिसफंकशन के सुबूत थे, उनमें मृत्यु, हार्ट अटैक और हार्ट फेल होने का जोखिम अधिक था।

कार्डिएक स्ट्रेस लेबोरेटरी के निदेशक प्रोफेसर विवियन टैक्वेटी ने कहा कि अध्ययन में 669 लोगों के मसल्स और अलग-अलग जगह के फैट का विश्लेषण किया गया, ताकि समझा जा सके कि शरीर की संरचना हृदय की छोटी रक्त वाहिकाओं को कैसे प्रभावित कर सकती है। अन्य ज्ञात जोखिम कारकों और बीएमआइ की परवाह किए बिना फैटी मसल्स में प्रत्येक एक प्रतिशत की वृद्धि के साथ हृदय रोग का खतरा सात प्रतिशत तक बढ़ जाता है। दूसरी ओर लीन मसल्स वाले लोगों में जोखिम कम होता है।

(आइ.ए.एन.एस.)

आंख की रेटिना से मिल सकता है स्ट्रोक के जोखिम का संकेत

शोधकर्ताओं ने पाया कि आंख की रेटिना स्ट्रोक के जोखिम का पूर्वानुमान लगाने में सक्षम है। एक शोध के अनुसार, आंख को रेटिना में रक्त वाहिकाएं बिना लैब परीक्षणों के उच्च कोलेस्ट्राल जैसे ज्ञात जोखिम कारकों के रूप में स्ट्रोक के जोखिम का सटीक अनुमान लगाने में मदद कर सकती हैं।

'हार्ट' जर्नल में प्रकाशित शोध के निष्कर्ष में 'वैस्कुलर फिंगरप्रिंट' का वर्णन किया गया है, जिसमें रक्त वाहिका स्वास्थ्य के 29 संकेतक शामिल हैं। आस्ट्रेलिया के विक्टोरियन आई एंड इयर हास्पिटल के शोधकर्ताओं ने बताया कि वाहिकाओं का जटिल नेटवर्क मस्तिष्क को शारीरिक स्थितियों के बारे में जानकारी देता रहता है। इसलिए डायबिटीज जैसी बीमारियों के कारण होने वाले नुकसान का आकलन करने के लिए रेटिना की रक्त वाहिकाएं कम संसाधन में प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल का उपयुक्त माध्यम हो सकती हैं।

शोध दल ने रेटिना में रक्त वाहिका नेटवर्क की पांच विशेषताओं के संबंध में ब्रिटिश बायोबैंक डाटासेट में 68,753 व्यक्तियों की छवियों का विश्लेषण किया, जिसमें घनत्व, मुड़ाव और नसों और धमनियों की जटिलता शामिल है। 12.5 वर्ष के फालोअप के दौरान इनमें से 750 प्रतिभागियों में स्ट्रोक पाया गया। स्ट्रोक के कुल 118 सूचकांकों में से 29 जोखिम कारकों की पहली बार पहचान की गई। इन 29 सूचकांकों में आधे से अधिक घनत्व, आठ जटिल, तीन कैलिबर (लंबाई, ब्यास और रक्त वाहिकाएं) और एक मुड़ाव से संबंधित थे। रेटिना में रक्त वाहिकाओं के घनत्व में परिवर्तन स्ट्रोक के जोखिम में 10 19 प्रतिशत की वृद्धि के साथ संबंधित था।

हाल ही में, शोधकर्ताओं ने पाया है कि आंख की रेटिना की स्थिति से स्ट्रोक के जोखिम का संकेत मिल सकता है। यह अध्ययन 'Hypertension' नामक जर्नल में प्रकाशित हुआ है। शोध में बताया गया है कि रेटिना में सूक्ष्म रक्तस्राव या अन्य असामान्यताएं भविष्य में स्ट्रोक होने की संभावना को दर्शा सकती हैं।

इस अध्ययन के अनुसार, रेटिना की नियमित जांच से स्ट्रोक के जोखिम का प्रारंभिक पता लगाया जा सकता है, जिससे समय पर रोकथाम और उपचार संभव हो सके।

(दैनिक जागरण 15 जनवरी 2025)

महिला दिवस (8 मार्च पर विशेष)

क्रांतिकारी शिक्षिका सावित्रीबाई फुले

- मुनेश त्यागी

3 जनवरी को भारत की पहली महिला शिक्षक सावित्रीबाई फुले का जन्म हुआ था, उन्होंने अपने पति ज्योति राव के सहयोग और समर्थन से उस समय की रूढ़िवादिता का विरोध किया, बाल विवाह की मुखालिफत की, छुआछूत का विरोध किया, समाज में फैली जात पात को छोड़ने और उसकी गोलबंदी तोड़ने का आह्वान किया। उन्होंने लिंग भेद, जाति भेद और बालिका हत्या का जमकर विरोध किया।

उनके रास्ते में उस समय शिक्षा पर काबिज ताकतों द्वारा भयंकर हमले किये गये। उनका सामाजिक बहिष्कार किया गया। उन पर कीचड़ और पत्थर फेंके गए, मगर उन्होंने कभी भी हार नहीं मानी। जब भी वे बच्चों और औरतों को पढ़ाने स्कूल जाती थीं तो दो साड़ियां लेकर जाती थी क्योंकि ब्राह्मणवादी और औरतों की शिक्षा विरोधी ताकतें उन पर गोबर, कीचड़ और पत्थर फेंकती थीं। बाद में स्कूल जाकर वे उस साड़ी को बदलकर दूसरी साड़ी पहनती थी। सावित्रीबाई फुले और फातिमा शेख ने शिक्षा की जो मशाल जलाई थी, वह आज मध्दिम पड़ गई है। उस शिक्षा की मशाल को आज ओर तेज जलाने की जरूरत है।

भारत के महाराष्ट्र की महान और पहली शिक्षिका और समाज सुधारक जिसने सारे विरोधों के बाद फातिमा शेख के साथ मिलकर औरतों के लिए भारत में पहला बालिका स्कूल खोला था, सावित्री बाई फुले का जन्म 3 जनवरी 1831 को हुआ था। भारत में इस दिन को प्रतिवर्ष राष्ट्रीय बालिका दिवस के रूप में जाना और मनाया जाता है। उनका परिवार एक कृषक परिवार था। उनके पति का नाम ज्योतिराव फुले था। उन्होंने विधवा ब्राह्मणी के पुत्र को दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार किया जिसका नाम यशवंतराव था जो बाद में उनके प्रयासों से डॉक्टर बना और जो दलितों और गरीबों का इलाज करता था।

जब भारत गुलामी की दलदल में फंसा था, जब औरतों को कोई आजादी नहीं थी और तमाम सारी औरतें गुलामी की जिंदगी जी रही थीं, तब किसी औरत द्वारा औरतों के लिए, स्कूल का खोला जाना, बहुत ही बड़े जिगरे का काम था, बहुत बड़े साहस का काम है। भारत में सबसे पहला महिला स्कूल सावित्रीबाई फुले द्वारा 1948 में महाराष्ट्र के पुणे में खोला गया था। यह स्कूल सबसे पहले, उस्मान शेख ने, अपने मकान में बनवाया था। इसी स्कूल में उस्मान शेख की बहन फातिमा शेख शिक्षिका बनीं, जो आखिरी वक्त तक सावित्रीबाई फुले का साथ देती रही।

उन्होंने न केवल महिलाओं को पढ़ाने और पढ़ने के लिए स्कूल खोला, बल्कि उन्होंने दलितों, पिछड़ों और सदियों से शोषित, पीड़ित और वंचित समाज के लिए भी स्कूल खोले और उनके अंदर शिक्षा के प्रति जागरूकता का अलख जगाया। जिस समय सावित्रीबाई और फातिमा शेख ने यह बीड़ा उठाया, उस समय का तमाम मेहनतकश तबका, शूद्र, गुलाम, दास, किसान, मजदूर, सब के सब मनुवादी गुलामी और दासता के शिकार थे, छूआछूत के कोढ के शिकार थे।

उन सब को लिखने, पढ़ने, धन दौलत रखने और हथियार रखने का कोई अधिकार नहीं था। पूरे मेहनतकश समाज में नितांत अधिकारहीनता का आलम था। चारों ओर दासता, हीनता, अधिकारहीनता और गुलामी का माहौल पसरा हुआ था। ऐसे जन विरोधी माहौल में और समाज में शिक्षा की बात करना और इसे धरती पर उतारना बहुत बड़े हौसले और बुलंद इरादों का काम था। उनका उस जमाने में यह काम एकदम क्रांतिकारी था। उनके इस महान और क्रांतिकारी कारनामे और जज्बे को इंकलाबी सलाम।

यह काम करना उन्हें बहुत महंगा पड़ा था और बेहद दर्द और पीड़ा का सामना करना पड़ा था। उस समय के लोगों ने बालिका शिक्षा का जबरदस्त विरोध किया था। यहां तक की सावित्रीबाई फुले परिवार का सामाजिक बहिष्कार किया गया और उन्हें व्यक्तिगत प्रताड़नाओं का सामना करना पड़ा। उन पर कूड़ा कीचड़ और पत्थर तक फेंके गये, लेकिन उन्होंने इस सब को अपने जीवन के मिशन के रूप में लिया। इसमें उन्होंने किसी की भी परवाह नहीं की और अपने उसूलों से कोई समझौता नहीं किया और महिला शिक्षा की अपनी मुहिम को जारी रखा।

सावित्रीबाई फुले एक महान सामाजिक समाज सुधारक
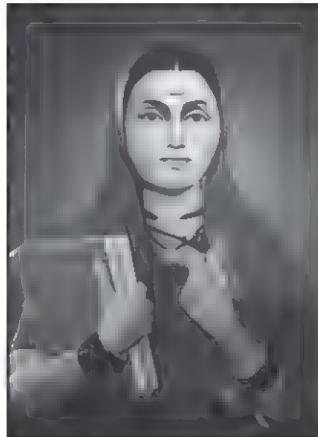
भी थीं। उन्होंने विधवा विवाह करने, सती प्रथा रोकने, बालिका विवाह रोकने, छुआछूत खत्म करने जाति प्रथा उन्मूलन, विधवा बालमुंडन विरोध किया और औरतों और दलितों को समाज में ऊपर लाने में बहुत बड़ी भूमिका अदा की थी। उन्होंने भारतीय समाज में छाई ऊंच-नीच और छोटे-बड़े की मानसिकता का विरोध किया था और इसे बदलने का भरपूर आह्वान किया था।

आज हमारी माताएं, बहने, बहुएं और बच्चियां जिस माहौल में रह रही हैं, उसे यहां तक लाने में सावित्रीबाई फुले और फातिमा शेख का बहुत बड़ा योगदान है। अगर इन दोनों महान शिक्षिकाओं के जेहन में समानता और शिक्षा का ख्याल न आया होता तो हमारी औरत जात आज भी चूल्हे चौके से बाहर नहीं निकल पाई होतीं।

आज हम सोचते हैं कि यदि इन दोनों ने उस समय में यह ऐतिहासिक और साहसिक कदम नहीं उठाया होता तो शायद आज भी भारतीय समाज की अधिकांश औरतें, मर्द जात की गुलामी ही कर रही होती और मर्दों के पैरों में पड़ी हुई होतीं।

वैश्विक स्तर पर, सबसे पहले रूस में 1917 की किसानों और मजदूरों की जनक्रांति ने ही दुनिया में सबसे पहले सभी औरतों को पढ़ने और शिक्षित होने की और मुफ्त शिक्षा के अधिकार का इंतजाम किया था। उन्हें मनुष्य के बराबर शिक्षा समानता और रोजगार का अधिकार मुहैया कराया गया था और इसी रूसी क्रांति ने दुनिया में सबसे पहले औरतों की गुलामी के विनाश का बिगुल बजाया था।

बाद में इसी क्रांति की बदौलत औरतों को शिक्षा और रोजगार के अवसर मिलते ही रूस की और तमाम समाजवादी देशों की औरतें देखते ही देखते मर्दों के समाज से आगे निकल गईं। उन्होंने फिर कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। क्रांति के फलस्वरूप मिली आजादी के बाद औरतों ने शिक्षा स्वास्थ्य खेल और साहित्यिक जगत में मर्दों को पीछे छोड़ दिया। सच में हमारी दुनिया की औरतें इन्हीं क्रांतियों की सबसे ज्यादा धनी है क्योंकि इन्हीं क्रांतियों ने पूरी दुनिया में समाजवादी समाज ने उन्हें पढ़ने लिखने और रोजगार के अवसर प्रदान किए और हजारों साल के शोषण, जुल्म, अन्याय और अशिक्षा से उन्हें मुक्ति दिलाई।

सावित्रीबाई फुले की पहल का ही असर था कि आजादी प्राप्ति के बाद, भारत के संविधान में मर्दों की भांति तमाम औरतों को भी पढ़ने लिखने और शिक्षित होने का अधिकार दिया गया और इस मुफ्त शिक्षा की वजह से औरतें देखते ही देखते अधिकांश स्कूलों, कालेजों में शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी उन्हें डॉक्टर और नर्स बनने में देर नहीं लगी और कमाल यह है कि भारत में आज औरतें भी आदमियों के कंधे से कंधा मिलाकर जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं।

इस सब का सबसे ज्यादा श्रेय भारत की पहली महिला शिक्षा सावित्रीबाई फुले और फातिमा शेख को जाता है। हालांकि आज औरतों की स्थिति हमारे समाज में वह नही बन पाई है जिसका सपना सावित्रीबाई फुले देखा था। भारत में आज भी मनुवादी सोच और पितृसत्तात्मक मानसिकता हावी है। औरतें हमारे समाज में आज भी शोषण, भेदभाव और विभिन्न अपराधों की शिकार बनी हुई हैं। हमें इन औरत विरोधी मानसिकता, सोच और माहौल को बदलने के लिए सबको एकजुट प्रयास कर आगे आना होगा।

सबसे पहले सावित्रीबाई फुले और फातिमा शेख और उसके बाद नेहरू की सरकार ने भारत में यहां की बालिकाओं और औरतों को शिक्षा देने की जो लौ जलाई थी, आज वह लगातार मध्दिम पड़ती जा रही है क्योंकि सरकार शिक्षा के बजट में कटौती करती जा रही है। सरकारी स्कूलों को बंद करके शिक्षा का शिक्षा को मुनाफे का सौदा बनाकर उसका निजीकरण कर दिया गया है। इस देश के 81 करोड़ गरीब लोगों का पढ़ना आज लगभग मुश्किल हो गया है। आज भी हमारे देश में 40% से ज्यादा जनसंख्या अनपढ़ है। आज हमें फिर से सावित्रीबाई फुले और फातिमा शेख द्वारा जलाई गई शिक्षा की मशाल को महफूज रखने की जरूरत है और इस शिक्षा की लौ को और अधिक तेजी से जलाने की जरूरत है।

मेरे बेटे...

इतने धार्मिक मत होना
कि ईश्वर को बचाने के लिए
इंसान पर उठ जाए तुम्हारा हाथ

न कभी इतने देशभक्त
कि किसी घायल को उठाने को
झंडा ज़मीन पर न रख सको।

– **कविता कादम्बरी**

डॉक्टर नॉर्मन बैथ्यून की संघर्ष गाथा

– गुरप्रीत

''स्वास्थ्य सुविधाओं की अर्थव्यवस्था की समस्या विश्व अर्थव्यवस्था की समस्या का हिस्सा है और इससे कटी हुई या अलग नहीं है। दवाइयों का जो चलन हम देख रहे हैं, अय्याश व्यापार है। हम ज़ेवरों की क़ीमत पर रोटी बेच रहे हैं। ग़रीब, जो कि हमारी आबादी का 50% हिस्सा हैं, भुगतान नहीं कर सकते, और भूखे मर रहे हैं... दवाइयों का समाजीकरण करना और डॉक्टरी की व्यक्तिगत प्रैक्टिस को रोकना या ख़त्म करना ही इस समस्या का एकमात्र हल होगा। आइए, हम मुनाफ़े को, व्यक्तिगत आर्थिक मुनाफ़े को, दवाइयों से बाहर निकालें, और अपने पेशे को लालची व्यक्तिवाद से मुक्त करें... अपने जैसी जनता के दुखों की क़ीमत पर अपने आप को अमीर बनाने को अपमानजनक करार दें। ...आइए जनता को यह ना कहें कि ''तुम्हारे पास कितना पैसा है?'' बल्कि यह कहें कि ''हम बेहतर तरीक़े से आपकी सेवा कैसे कर सकते हैं?'' हमारा नारा होना चाहिए, ''हम आपको सेहतमंद बनाने के पेशे में हैं।''

ये शब्द कनाडा के प्रसिद्ध डॉक्टर नॉर्मन बैथ्यून के हैं, एक ऐसे डॉक्टर जिनके लिए डॉक्टरी का पेशा ज़्यादा-से-ज़्यादा जनता की सेवा करने, उन्हें बीमारियों से मुक्त करने का साधन था। उन्होंने स्वास्थ्य सुविधाओं को कारोबार बनाने की जगह इसे हर नागरिक का अधिकार बनाने का सपना देखा और इसके लिए काम किया। नॉर्मन बैथ्यून केवल एक डॉक्टर नहीं थे, बल्कि एक अच्छे अध्यापक, ग़रीबों के हमदर्द, सामाजिक बेइंसाफ़ी के विरुद्ध लड़ने वाले कार्यकर्ता और सर्जरी और डॉक्टरी तकनीकों के खोजी थे। वे अंतरराष्ट्रीयवादी थे, जिनकी हमदर्दी किसी एक देश से नहीं, बल्कि पूरे विश्व की मेहनतकश जनता से थी, जिसके कारण वे स्पेन की फ़ाशीवादी हुकूमत के विरुद्ध युद्ध लड़ रही मेहनतकश जनता के इलाज के लिए गए, फिर जापानी हमले के ख़िलाफ़ जूझ रही चीनी जनता की मदद के लिए गए, जहाँ इलाज करते हुए उनकी मौत हुई।

नॉर्मन बैथ्यून का जन्म 3 मार्च 1890 को कनाडा के ओंटेरियो प्रांत में हुआ। उनके पिता चर्च के पादरी थे, जिसके कारण उनका परिवार अलग-अलग शहरों में घूमता रहा। 1909 में वे टोरंटो यूनिवर्सिटी में दाख़िल हुए, लेकिन कुछ कारणों के चलते उन्हें पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ी और उन्होंने अपने गुज़ारे के लिए मज़दूरी भी की और पढ़ाने का काम भी किया। फिर 1912 में इसी यूनिवर्सिटी के मेडिकल स्कूल में दाख़िल हुए। 1914 में पहला विश्व युद्ध शुरू हुआ तो पढ़ाई छोड़कर जंग में ज़ख्मियों की सेवा के लिए चले गए। इस काम के दौरान वे ख़ुद ज़ख्मी हो गए, जिसके कारण उन्हें 6 महीने अस्पताल में बिताने पड़े। इसके बाद उन्होंने अपनी डॉक्टरी की पढ़ाई दोबारा शुरू की और 1916 में डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी की।

1924 में उन्होंने अमेरिका के डेट्रायट शहर में अपनी डॉक्टरी की प्रैक्टिस शुरू कर दी। यहाँ उनके बहुतेरे मरीज़ ग़रीब मज़दूर होते थे, जिनके लिए उन्हें कोई भी पैसा देना संभव ना होता। वे ऐसे मरीज़ों का बिना फ़ीस या बहुत कम पैसे लेकर भी इलाज करते। एक बार उन्हें एक मज़दूर परिवार में बच्चे की डिलीवरी के लिए बुलाया गया। यह परिवार रेलगाड़ी के नकारा हो चुके डिब्बे में बहुत दयनीय हालत में रह रहा था। बच्चे के जन्म के बाद उन्होंने परिवार से कोई फ़ीस भी ना ली, लेकिन यह ख़याल उन्हें परेशान करता रहा कि ऐसे हालातों में यह बच्चा कितने दिन जीवित रह सकेगा। ऐसी घटनाओं से दो चार होने के कारण उन्होंने यह सोचना शुरू कर दिया कि केवल ऐसे लोगों का इलाज करना काफ़ी नहीं है, बल्कि सामाजिक बेइंसाफ़ी को ख़त्म करना और डॉक्टरी के पेशे को नए तरीक़े से संगठित करना भी ज़रूरी है, ताकि किसी को ग़रीबी के कारण इलाज से वंचित ना रहना पड़े। उनका कहना था ''हमें दान को ख़त्म करके इंसाफ़ देना चाहिए।'' लेकिन ये विचार अभी बहुत शुरुआती पड़ाव में ही थे।
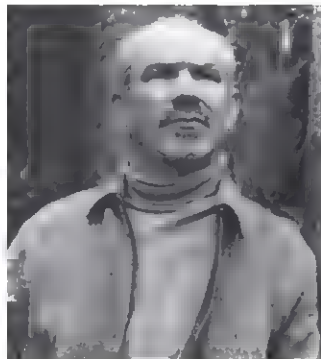
यहाँ लगातार ग़रीबों का इलाज करने और बुरे हालातों में रहने के कारण 1926 में उन्हें टी.बी. की बीमारी हो गई। तब तक टी.बी. का कोई इलाज नहीं था, केवल अच्छे वातावरण में रहना, अच्छा भोजन करना और आराम करना ही इसका इलाज माना जाता था। इसके लिए कई विशेष सैनिटोरियम बने

हुए थे। वे न्यूयॉर्क के टरूडो सैनिटोरियम में दाखिल हो गए और तक़रीबन एक साल यहाँ रहे। 1927 में उन्होंने एक मैगज़ीन में टी.बी. के इलाज के लिए एक विधि के ख़याल के बारे में पड़ा और उस इलाज को अपने ऊपर आज़माने के बारे में सोचा। डॉक्टर इस नई विधि का जोखिम उठाने के लिए तैयार नहीं थे, लेकिन उन्होंने ख़तरे की पूरी ज़िम्मेदारी लेते हुए डॉक्टरों को ख़ुद पर यह इलाज करने के लिए मना लिया।

27 अक्टूबर 1927 को उनका सफल ऑपरेशन हुआ और 2 महीने के बाद वे सेहतमंद होकर निकले। उनके इस जोखिम उठाने के कारण टी.बी. की बीमारी का इलाज मिल गया। इसके बाद उन्होंने करीब 2 साल टी.बी. अस्पताल में काम किया और फिर 1929 में कनाडा के क्यूबिक प्रांत में रॉयल विक्टोरिया अस्पताल, मॉन्ट्रियल में सर्जन और अध्यापक के तौर पर काम किया। इस दौरान उन्होंने कई नई इलाज विधियों पर काम किया और सर्जरी के कई नए औज़ार ईजाद किए। 1920 में इंग्लैंड में उन्हें फ्रांसिस कैंपबल पैनी से प्यार हुआ और 1923 में उन्होंने शादी करवा ली, लेकिन 1926 में दोनों का तलाक़ हो गया। 1929 में उन दोनों ने दोबारा शादी करवा ली, लेकिन 1933 में फिर वे अलग राहों पर चल पड़े। उनके कोई बच्चा नहीं था और इसके बाद सारी ज़िंदगी वे अकेले रहे।

1935 का साल उनकी ज़िंदगी का मोड़ बिंदु साबित हुआ, जब उन्हें समाजवादी सोवियत यूनियन में जाने का मौक़ा मिला। यहाँ उन्होंने देखा कि इलाज और सेहतमंद ज़िंदगी को हर मनुष्य का अधिकार बनाने की जिन बातों का वे सपना ले रहे थे, वे यहाँ हक़ीक़त बन चुकी थीं। टी.बी. के इलाज के बारे में जो बातें वे सोच रहे थे, वे यहाँ पहले से ही लागू की जा रही थीं, बल्कि स्वास्थ्य विज्ञान के क्षेत्र में और भी बहुत कुछ नया किया जा रहा था। इसके साथ ही उन्होंने यहाँ बाक़ी सामाजिक जीवन में भी बेइंसाफ़ी का ख़ात्मा देखा। इस आँखों देखे तजुर्बे से प्रभावित होकर वे कम्युनिस्ट बन गए और कनाडा वापस जाने के बाद कनाडा की कम्युनिस्ट पार्टी के मैंबर बन गए। इसके बाद उनकी कम्युनिस्ट कार्यकर्ता के तौर पर ज़िंदगी की शुरुआत हुई, जो वैसे तो केवल 4 साल की थी, पर युगों पर अपनी छाप छोड़ गई।

1936 में स्पेन में राष्ट्रपति मैनुअल आजाना के नेतृत्व वाली रिपब्लिकनों की सरकार थी, जो कई प्रकार के समाजवादियों, उदारपंथियों और जनवाद पसंद लोगों की साझा सरकार थी। इसे फ़ाशीवादी जनरल फ्रांसिस फ्रांको द्वारा पलटने की कोशिश की गई। स्पेन के पूँजीपति, जर्मन नाज़ी और इटली के फ़ाशीवादी फ्रांको की पीठ पर खड़े थे और इसके विरुद्ध स्पेन के रिपब्लिकनों को अलग-अलग मुल्क़ों की मेहनतकश जनता का साथ मिला। कई मुल्क़ों में से कम्युनिस्ट कार्यकर्ता इन फ़ाशीवादियों के विरुद्ध इस जंग में स्पेनी जनता का साथ देने के लिए आए। 24 अक्टूबर 1936 को डॉक्टर नॉर्मन बैथ्यून भी स्पेन पहुँच गए और युद्ध के मोर्चे पर ज़ख़्मियों के इलाज में जुट गए। पहले विश्व युद्ध में उन्होंने बहुत सारे सिपाहियों को युद्ध के मैदान में ख़ून बह जाने के कारण मरते देखा था। इस तजुर्बे के आधार पर उन्होंने ज़ख़्मियों को अस्पताल लाने की जगह मुहाज की रेखा पर ही ज़ख़्मियों को ख़ून चढ़ाने की नई विधि ईजाद की, जिसके कारण हज़ारों सिपाहियों की जान बच गई। इस युद्ध के दौरान स्पेन का मालगा शहर फ़ाशीवादियों के हाथ आ गया था और उन्होंने वहाँ क़त्लेआम शुरू कर दिया और जनता वहाँ से अपनी जान बचाकर सुरक्षित जगहों पर भाग रही थी। इसके दौरान डॉक्टर नॉर्मन ने अपने मेडिकल काफिले में जमा किया ख़ून और अन्य सामग्री निकाल दी और उसमें जनता को लादकर बचाना शुरू किया। फ़ाशीवादियों के हत्थे चढ़ जाने के ख़तरे को उठाते हुए वे और उनके साथी 4 दिन तक 24 घंटों इस काम में लगे रहे। 27 अक्टूबर 1937 को वे स्पेन से वापस कनाडा आ गए और स्पेन की जनता के पक्ष में समर्थन जुटाने और चंदा इकट्ठा करने के काम में लग गए।

इस दौरान चीन पर जापान ने हमला कर दिया। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में जनता जापानी हमले के विरुद्ध युद्ध में कूद गई। इस युद्ध में जनता की मदद करने को अपना कर्तव्य जानते हुए डॉक्टर नॉर्मन 2 जनवरी 1938 को चीन जा पहुँचे। यहाँ उनकी चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के नेता माओ-त्से तुंग से मुलाक़ात भी हुई और उसके बाद वे स्वास्थ्य सेवाएँ देने के लिए युद्ध के मैदान में चले गए। चीनी जनता की इस फ़ौज के पास ना कोई ढंग के अस्पताल थे, ना पूरे डॉक्टरी औज़ार और ना ही दवाइयाँ। इन तंगियों और उलझनों भरे रास्ते पर उन्होंने चीनी लड़ाकुओं को स्वास्थ्य सेवाएँ देने की अपनी यात्रा शुरू कर दी और अलग-अलग मोर्चों पर गए। चार महीनों में ही उन्होंने 750 किलोमीटर की यात्रा की, 300 से

ज़्यादा ऑपरेशन किए, ज़ख्मियों के इलाज के लिए 13 स्वास्थ्य केंद्र बनाए और बहुत सारे लोगों को बुनियादी डॉक्टरी सिखलाई भी दी। स्पेन की तरह यहाँ भी उन्होंने चलता फिरता खून का बैंक तैयार किया, ताकि जंग के मैदान में जाकर ज़ख्मियों का इलाज किया जाए। उन्होंने नारा दिया : ''ज़ख्मियों के पास जाओ, यह इंतज़ार ना करो कि वे तुम्हारे पास आएँगे।''

चीनी जनता की भाषा से अनजान होने के बावजूद भी वे यहाँ जनता से घुल-मिल गए और चीनी जनता से उनको बेइंतहा प्यार और आदर मिला। डॉक्टर नॉर्मन अपनी स्वास्थ्य सेवाएँ बिल्कुल युद्ध के मैदान में दे रहे थे, जहाँ किसी भी वक्त जापानी हमले के शिकार होने का खतरा सर पर मँडराता रहता था। उनके द्वारा बनाया गया पहला अस्पताल जापानी हवाई हमले का शिकार हो गया था और उन्होंने नया अस्पताल बनाकर अपना काम जारी रखा। इलाज के लिए ज़रूरी औज़ारों और दवाइयों की कमी के कारण वे कनाडा में अपने दोस्तों से आर्थिक मदद भेजने के लिए लिखते रहे। 1939 में उन्होंने कनाडा वापस जाने का फ़ैसला कर लिया था, ताकि चीन की मदद के लिए आर्थिक स्रोत इकट्ठे किए जा सकें, पर इसी वक्त जापान ने वापस बड़ा हमला कर दिया। उन्होंने अपना फ़ैसला बदल लिया और वापस इलाज के कामों में जुट गए। इस दौरान उन्होंने एक बार बिना सोए 69 घंटे में 115 ऑपरेशन किए। उनके साथी बार बार उनको आराम करने के लिए बोल रहे थे, लेकिन आख़िरी मरीज़ का इलाज करने तक वे काम में लग रहे।

यहाँ की ज़िंदगी के बारे में उन्होंने अपने एक दोस्त को चिट्ठी में लिखा, ''यह सच है कि मैं थका हुआ हूँ, पर मुझे लगता है कि मैं ज़िंदगी में पहले कभी इतना खुश नहीं रहा। मैं वे काम कर रहा हूँ, जो मैं करना चाहता हूँ- मेरे पास कोई पैसा नहीं है और ना ही मुझे इसकी ज़रूरत है, यहाँ मुझे मेरी ज़रूरत की हर चीज़ मिल जाती है। मेरी कोई इच्छा अधूरी नहीं रही। मेरे साथ उतने ही प्यार और आदर से एक अहम कॉमरेड जैसा व्यवहार किया जाता है, जितने की कल्पना की जा सकती है।''

1 नवंबर 1939 को एक ज़ख्मी का इलाज करते हुए उनके हाथ में ब्लेड लग गए, क्योंकि उनके पास इलाज के लिए दस्ताने नहीं थे। इसके साथ उनके ख़ून में इंफ़ेक्शन फैल गया और वे फिर भी इलाज के कामों में लगे रहे। इस कारण उनको तेज़ बुखार और उल्टियाँ शुरू हो गईं और उनको इलाज के लिए अस्पताल लाया गया, पर तब तक इंफ़ेक्शन पूरे ख़ून में फैल चुका था और उन्हें खुद भी इस बात का एहसास हो गया था कि अब उनका आख़िरी समय आ गया है। 12 नवंबर को उन्होंने अपने एक दोस्त को अलविदा चिट्ठी लिखी और 13 नवंबर 1939 को सवेरे 5:23 पर उन्होंने आख़िरी सांस ली। उन्हें जानने वाले लोगों में दुख की लहर दौड़ गई। 17 नवंबर को उनकी अंतिम रस्म करके उन्हें दफ़नाया गया। 1 दिसंबर को उनकी याद में बड़ी सभा की गई।

उनकी याद में चीन के कम्युनिस्ट नेता माओ त्से तुंग ने लिखा, ''यह कैसी भावना है जो एक विदेशी को नि:स्वार्थ होकर चीनी जनता की मुक्ति के काम में लगा देती है? यह अंतरराष्ट्रीयवाद की भावना, कम्युनिज़्म की भावना है, जिससे हर चीनी कम्युनिस्ट को सीखना चाहिए। मुझे उनकी मौत का बहुत दुख है। अब हम सभी उनको याद कर रहे हैं, जो दर्शाता है कि उनका जज़्बा हर किसी को कितनी गहराई से प्रेरित करता है। हम सभी को उनसे पूर्ण निस्स्वार्थता की भावना सीखनी चाहिए। इस भावना से हर कोई जनता के लिए बहुत लाभदायक हो सकता है। एक आदमी की योग्यता बड़ी या छोटी हो सकती है, लेकिन अगर उसमें यह भावना है, तो वे पहले ही नेक-दिल और शुद्ध, नैतिक ईमानदारी वाला और घटिया हितों से ऊपर उठा एक ऐसा आदमी है, जो जनता के लिए महत्वपूर्ण है।''

अपनी मौत से पहले एक वसीयतनुमा चिट्ठी में उन्होंने अपनी सारी संपत्ति कनाडा और चीन के अपने दोस्तों में बाँटने का फ़ैसला किया था और यह संपत्ति कोई ज़मीन, जायदाद या पैसा नहीं थी, बल्कि इसमें केवल दो कोट, जूतों के कुछ जोड़े, कुछ पैंटें, डॉक्टरी इलाज के औज़ार, कंबल जैसा साधारण सामान था। इसी चिट्ठी में उन्होंने लिखा, ''आख़िरी 2 साल मेरी ज़िंदगी के सबसे महत्वपूर्ण और सबसे शानदार साल रहे हैं। भले ही कुछ समय मैंने अकेलापन महसूस किया, लेकिन यहाँ मैंने अपने प्यारे कॉमरेडों में अपनी ज़िंदगी को सबसे भरपूर जिया है।''

ऐसे डॉक्टर नॉर्मन बैथ्यून के लिए डॉक्टरी का पेशा केवल और केवल जनता की सेवा का साधन था। उसकी यह भावना केवल मानवतावाद से प्रभावित नहीं थी, बल्कि इसके पीछे सामाजिक बेइंसाफ़ी को खत्म करने और लूट और शोषण से मुक्त समाज का निर्माण करने की कम्युनिस्ट सोच थी। स्पेन

की जंग के दौरान शहीद हुए सिपाहियों पर उन्होंने एक कविता लिखी थी और उसी कविता की इन पंक्तियों से हम उन्हें श्रद्धांजलि पेश करते हैं:

उस मुरझाए चंद्रमा की ओर,
हम अपनी बंद मुट्ठियों को उठाते हैं,
और बेनाम शहीदों को
याद करते हुए
अपना संकल्प दोहराते हैं;
''आज़ादी और
भविष्य के संसार के लिए
लड़ने वाले कॉमरेड,
तुम जो हमारे लिए मरे,
हम तुम्हें याद रखेंगे।''

(साभार : ''मुक्ति संग्राम''-नवंबर 2024)

रागनी

हम मजदूर किसान देश का, साराए बोज उठारे
हामें भूखे क्यों मररे यें, लूटू मौज उढारे

1. ऊंची-ऊंची महल अटारी, त्यार करी मजदूरां नै
नहरें, सड़कें, पार्क क्यारी, त्यार करी मजदूरां नै
जहाज हवाई, मोटर लारी, त्यार करी मजदूरां नै
छोटी-मोटी चीजें सारी, त्यार करी मजदूरां नै
इतना सारा करें पाछै भी, हांडा मारे मारे
2. ऊबड़ खाबड़ खेत एकसे, करे मजदूर किसानां नै
सभी अनाजों के भंडार, भरे मजदूर किसानां नै
फल, सब्जी और पटसन त्यार, करे मजदूर किसानां नै
सबका पेट भरां सब पार, करे मजदूर किसानां नै
हाड़ तोड़ हम काम करां सां, मुश्किल चलैं गुजारे
3. क़ारखाने और खानां के म्ह, आड़ै मजदूरे काम करैं
खेतां पै मजदूर किसाने, मिलकै काम तमाम करैं
ओढण-पैहरण खाण-पीण का, हम दोनों इंतजाम करैं
म्हारे बालक लाग फौज म्ह, रक्षा सुबह और शाम करैं
लाश मिलै ना युद्ध म्ह खफज्यां, म्हारी आंख के तारे
4. हम दोनों के कन्धयां ऊपर, सारै देश का बोझ पड़या
हम दोनों ही लुटदे रहा सां, हरदम नकशा रहवै झड़या
हम दोनों के माल की बोली, लावै धन्ना सेठ बड़ा
म्हारे बरगा ना कुछ बोलै, एक ओड़ नै रहवै खड़्या
'अंग्रेज सिंह' कैह बिना आन्दोलन, हक्क ना थयावैं म्हारे

-अंग्रेज सिंह अलेवा

कविता

गीत सुनाना चाहता हूं

मैं गीत सुनाना चाहता हूं,
मैं गाथा गाना चाहता हूं।
कब मिलेगा मेहनत का फल?,
मैं वो हिसाब चुकाना चाहता हूं।
मजदूर-किसान का देश में हिस्सा,
मैं वो हिस्सा बंटवाना चाहता हूं।
जिन बच्चों की है शिक्षा अधूरी,
मैं शिक्षा दिलवाना चाहता हूं।
कुछ लोगों के तन नग्न है,
मैं उनका तन ढकवाना चाहता हूं।
रोटी के घर में हैं लाले जिनके,
चूल्हा मैं जलवाना चाहता हूं।
बेटी की शादी को तरसें जो,
उनका भार चुकाना चाहता हूं।
जो गले में डालते फंदा,
मैं उनको मुक्त कराना चाहता हूं।
चक्कर काट घिस गये जूत्ते,
मैं भ्रष्टाचार मिटाना चाहता हूं।
चौथे स्तम्भ के जो बिके प्रहरी,
उनकी खबर चलाना चाहता हूं।
मेरे सपनों के रंग अभी अधूरे,
मैं उनमें रंग भरवाना चाहता हूं।
जाति धर्म की नफरत जिनमें,
उनको सबक सिखाना चाहता हूं।
दिल्ली जिनके लिए दूर अभी भी,
मैं उनका सफर कटाना चाहता हूं
'लुहानी' जीवन ढल रहा है,
मैं नया सवेरा लाना चाहता हूं।

-डॉ फूल सिंह लुहानी

आविष्कारक बनाम धर्मगुरु

-शकील प्रेम

बल्ब के आविष्कार से पहले की दुनिया में विज्ञान का उजाला नहीं था। तब रात की शुरुआत शाम ढलते ही हो जाया करती थी। आज की दुनिया पहले से ज्यादा चमकदार है। शहरों की रातें दिन के उजालों की तरह रोशन हैं तो गांवों की अंधेरी गलियों में भी उजाले की दस्तक हो चुकी है। आज रोशनी के विस्तार ने अंधेरों को समेट दिया है गांव हो या कस्बा सड़कें हो या गालियां हर जगह रोशनी है।

जब एडिसन ने बल्ब का अविष्कार किया तब शायद उन्हें भी इस बात का अंदाजा नही होगा कि उनकी ये मामूली सी खोज एक दिन पूरी दुनिया को बदल कर रख देगी।

बल्ब के अविष्कार से सिर्फ अंधेरे पर ही जीत हासिल नहीं हुई बल्कि दुनिया में विकास की रफ्तार पहले के मुकाबले कई गुना तेज हो गई. उत्पादन में तेजी आई। परिवहन में क्रांति आई। बिजली से चलने वाले दूसरे उपकरणों का ईजाद मुमकिन हुआ और खेती के परंपरागत तरीके बदल गए जिससे दुनिया की तस्वीर और तकदीर दोनों बदल गए। एडिसन से पहले पूरी दुनिया अंधेरों से डरती थी। चाँद की हल्की सी रोशनी, लालटेन की मद्धिम सी लौ और जुगनुओं की थोड़ी सी झिलमिलाहट काली स्याह रातों में यही अंधेरे का जुगाड़ हुआ करते थे।

मंदिर, मस्जिद, चर्च और गुरद्वारे रात के अंधेरों में खो जाया करते थे फ़र्ज़ और ईसा की नमाजे भी अंधेरे में ही अदा की जाती थी क्योंकि इमाम को कुरान का इल्म तो था लेकिन बल्ब का इल्म नहीं था। इसलिए इमाम साहब रोज मगरिब से पहले मस्जिद के चरागों में तेल डाल कर रात का इस्तक़बाल किया करते थे। मंदिर के कपाट भी रात को बंद हो जाया करते थे क्योंकि रात के अंधेरों में भगवान की कीमती मूर्तियों के चोरी हो जाने का डर बना रहता था।

एडिसन के द्वारा बल्ब का अविष्कार करने से पहले भी कुरान और दूसरे मजहबों की ज्ञानवर्धक किताबें उनके पास मौजूद थी लेकिन तब वे उन किताबों से बल्ब की जानकारी निचोड़ न पाए थे। फिर एडिसन पैदा हुए उन्होंने ये किताबें चुराई और इन ग्रंथों से बल्ब बनाने का वो गुप्त तरीका खोज निकाला जो इन किताबों को हजारों वर्षों तक पढ़ने वाले न ढूंढ पाए थे।

खैर चोरी के फार्मूले से ही सही बनाया तो एडिसन ने ही और उन्होंने सिर्फ बल्ब का आविष्कार ही नहीं किया था बल्कि 1000 आविष्कार ओर किये थे। आज रात के समय मंदिर और मस्जिदों की चकाचौंध देखकर हैरानी होती है क्योंकि इस जगमगाहट के अंदर क्षण भर में संकट दूर करने के दावे होते हैं। पल भर में सातवें आसमान तक का बखान होता है। कृपा होती है। रहमत होती है दुआ होती है। प्रार्थनाएं होती हैं उम्मीदें बेची जाती हैं आख़िरत ख़रीदी जाती है।

इन दड़बों में सब कुछ होता है लेकिन कुछ भी इनका अपना नहीं होता। कुछ भी इनकी अपनी कमाई का नहीं होता। सब ओरों की मेहनत का होता है। जिसे ये लोग ऊपरवाले के नाम पर हड़पते हैं। धर्म की इन आलीशान इमारतों में लगी एक एक ईंट इनकी अपनी नहीं होती। मजहब की इस चकाचौंध में बैठकर जिस बिजली पंखे या AC का आज ये लोग आनन्द ले रहे हैं उसे किसने बनाया था। इन्हें उनका नाम तक याद नही।

रोशनी की इस चकाचौंध के पीछे एडिसन ने अपनी सैंकड़ों रातें कुर्बान कर दी थी लेकिन धर्म के इन नकली अड्डों पर पलने वाले ये इंसाननुमा परजीवी आज उस एडिसन का नाम लेना तक मुनासिब नहीं समझते।

वे कहते हैं कि जिस एडिसन ने बल्ब बनाया उस एडिसन को दिमाग इनके खुदा ने ही तो दिया था अरे भाई तब खुदा ने वही बुद्धि तुम्हे क्यों नही दी ? क्या अपने ही खुदा के सामने तुम इतने बड़े नालायक थे कि उसने सारे आविष्कार करने की बुद्धि उन लोगों को दे दी जो तुम्हारी इस झूठी फिलॉसफी को मानते ही नहीं थे ? या सारे आविष्कारक तुम्हारे गुलाम थे जिन्होंने तुम्हारी अय्याशियों के लिए अपनी जिंदगी खपा दी ?

कब तक यह प्रचार करते रहेंगे आप लोग ?

धर्म के बिना तो दुनिया की एक तिहाई आबादी वर्षों से सुख चैन शांति और समृद्धि के साथ जी रही है लेकिन विज्ञान क्या चीज है जरा एक दिन इसके बिना रह कर तो देखो पता चल जाएगा ? 50 डिग्री गर्मी में जब तुम ऐ.सी. के मजे ले रहे होते हो न ठीक उसी समय सड़क पर कोई बच्चा भीख मांग रहा होता है। उसी वक्त न जाने कितने मासूमों के जिस्मों को कोई वहसी दरिंदे भूखे भेड़िये की तरह नोच रहे होते है।

जिस A.C. को तुमने बनाया ही नही आज उसके मजे ले रहे हो, जिसने इसका आविष्कार किया था तुम्हे उसका नाम तक याद नहीं और जिसे तुम कभी साबित ही न कर पाए लोगों

से उसका नाम जपाते हो, उसके नाम पर समाज का शोषण करते हो, पाखण्ड फैलाते हो, नफरत के बीज बोते हैं, एक गरीब को दूसरे गरीब से लड़वाते, हो सब उसी के नाम पर जिसका अता पता तुम नही ढूंढ पाए अभी तक। अरे सिर्फ जहालत के सिवा तुमने दिया क्या है दुनिया को।

बीमार पड़ते हो तो हॉस्पिटल याद आता है वहां ट्रीटमेंट लेते हो अल्ट्रासाउंड, X-ray, MRI, City Scan करवाते हो, इंजेक्शन लगवाते हो कभी सोचा है कि इनका आविष्कार किसने किया ? जब हर्ट सर्जरी, आंखों का आपरेशन, किडनी, एपेंडिक्स या बवासीर का सफल ऑपेरशन करवाने के बाद हॉस्पिटल से डिसचार्ज होते हो तब तुम्हे उस खुदा का नाम तो याद आ जाता है जिसने तुम्हारी दुआओं और प्रार्थनाओं को कभी सुना ही नहीं लेकिन तुम भूल जाते हो उन वैज्ञानिकों को जिनकी वजह से तुम चंगे हुए। जब बीमारी की वजह से तुम कराह रहे होते हो तब खुदा की जगह हॉस्पिटल ही क्यों याद आता है तुम्हें ? उसकी मर्जी के बिना पत्ता भी नही हिलता तब उसकी मर्जी के बिना हॉस्पिटल क्यों पहुंच जाते हो ? और हाँ ये जरूर याद रखना की हॉस्पिटल की दहलीज पर धर्म और मजहब की तुम्हारी फिलॉसफी दम तोड़ देती है और सारी दुआएं, आयतें, मंत्र और वर्सेज भी फेल हो जाते हैं। यहां काम आता है तो सिर्फ और सिर्फ साइंस। वही विज्ञान तुम्हे ठीक करता है जिसका एक छोटा सा नीडल भी तुमने नही बनाया। तुमने धर्म के नाम पर दुनिया को क्या दिया ? तुमने तो सच मे कुछ नहीं दिया और न कुछ किया। धन्य हो आप लोग....और धन्य हैं वो लोग जो आपके बताए रास्ते पर चलते हैं। दुनिया को बदलने वाले सभी आविष्कारकों को दिल से नमन।

हुक्कों पर झूलने का भेद!

श्रीलंका रेशनलिस्ट एसोसिएशन द्वारा दो बड़े धार्मिक ढोगों (चमत्कारों) का पर्दाफाश किया गया था,आग पर चलना और हुक्कों पर झूलने का।

1971 **'डेली मिरर'** में एक लेख "हुक्कों पर झूलना" लगा था। जो धार्मिक लोगों की सामान्य भावनाओं की तरफदारी कर रहा था।और उसमें दावा किया गया था कि मैडीकल विज्ञान के पास इस अद्‌भुत कारनामें की कोई व्याख्या नहीं।

श्रद्धालु कैसे अपने मांस को हुक्कों से चीरे जाने की पीड़ा को सहन करने योग्य हो जाता है?

शरीर विज्ञानी यह जानते हैं कि पीड़ा के दो हिस्से होते हैं, स्वंय इंद्री संवेदनशीलता और इस पर सवेंदनशीलता के बारे में भावात्मक प्रतिक्रिया।

किसी व्यक्ति की पीड़ा के प्रति प्रतिक्रिया पीड़ा के कारणों की महत्ता से निर्धारित की जाती है,जो अपने आप में संवेदनशील नहीं, जो तकलीफ को और गैर अस्तित्व को निर्धारित करती है।

सशक्त भावनाएं, चाहे वे धार्मिक हो अथवा अधार्मिक, पीड़ा के महसूस होने को रोकती है।

एक तर्कशील नौजवान ऐन सी जयसूर्या, जो नास्तिक था, ने तीन बार अलग अलग मौकों पर हुक्कों पर झूलने की रस्म को बिना पीड़ा के पूरा किया।

तर्कशील सोसाइटी पंजाब द्वारा बठिंडा में आयोजित 2005 में 5वें फ़ीरा के राष्ट्रीय सम्मेलन में ऐसे प्रदर्शन जिसमें शरीर में हुक्कों को डाल कर कार खींची गई और अन्य इसी प्रकार के प्रदर्शन पूरे शहर में किये गये थे।

तांत्रिक गिरोह ने मां से लाखों ठगे और बेटी से किया गैंगरेप

बागपत. संवाददाता। रटौल के एक पीड़ित परिवार ने तांत्रिक गैंग पर 21 लाख की नकदी और 20 लाख रुपये के आभूषण ठगने का आरोप लगाया। इसके अलावा बहन के साथ गैंगरेप करने का आरोप भी लगाया है। पीड़ित का आरोप है कि वे शिकायत लेकर पुलिस के पास पहुंचे, तो पुलिस ने बहन का डॉक्टरी परीक्षण तक नहीं कराया। उल्टे उन्हें धमकाते हुए थाने से भगा दिया। पीड़ित परिवार एस.पी. से मिला और आरोपियों के खिलाफ कार्रवाई किए जाने और दोषी पुलिस कर्मियों को निलंबित किए जाने की मांग की। रटौल कस्बे के इस दलित परिवार ने बताया कि कस्बे के ही रहने वाले कुछ लोग तांत्रिक गिरोह चलाते हैं। इन सभी ने एक साथ मिलकर मां और बहन को झांसा देकर 21 लाख रुपये व करीब 20 लाख के जेवर ठग लिये। आरोप है कि इन सभी लोगों ने षड्यंत्र रचकर एक प्लॉट का बैनामा भी अपने नाम करा लिया। प्लाट को वापस करने के नाम पर चार लाख रुपये लिए, लेकिन बैनामा वापस नहीं किया।

-हिन्दुस्तान (08-10-2025)

डाक का बहाना : किताबों पर निशाना

– पल्लव

हम नये भारत में हैं। पुराने भारत में छपी हुई सामग्री को डाक से भेजने का शुल्क पर्याप्त कम रखा गया था ताकि किताबें और पत्रिकाएं मंगाना लोगों को महंगा न पड़े और पढ़ने पढ़ाने की संस्कृति फूले फले। नये भारत में पढ़ने–पढ़ाने की संस्कृति को हतोत्साह करना है, क्योंकि इस भारत के हुक्मरान आलोचनात्मक और विचारशील नागरिक नहीं चाहते, इसलिए पुराने भारत की वह सुविधा छीन ली गयी है। पढ़िए, डाक के नियमों में ताज़ा संशोधन पर पल्लव का सुविचारित लेख :

2024 के आख़िरी दिनों में भारत सरकार के डाक विभाग ने एक ऐसा काम किया जिससे पुस्तक–प्रेमियों को गहरा धक्का लगा है। असल में स्वतन्त्रता के साथ ही भारत सरकार ने डाक विभाग से पुस्तकों को सामान्य पाठकों तक पहुंचाने के लिए एक विशेष प्रावधान किया था। इस प्रावधान में मुद्रित पुस्तकें पंजीकृत डाक से देश भर में कहीं भी भेजी जा सकती थीं। सत्तर के दशक में हिन्द पॉकेट बुक्स की घरेलू लाइब्रेरी योजना जैसे पाठक प्रिय उद्यमों की सफलता में इस प्रावधान का बड़ा योगदान था। पिछले एक–डेढ़ साल में इस प्रावधान पर दो बार संशोधन हुए। पहले इसकी दरों में आंशिक बढ़ोतरी की गयी और फिर इसे भी जी एस टी के अंतर्गत ला दिया गया। ये संकेत स्पष्ट थे कि अब सरकार की नज़र इस सेवा पर पड़ गयी है। नयी व्यवस्था में मुद्रित किताबों को पंजीकृत डाक से भेजने का यह प्रावधान पूरी तरह ख़त्म कर दिया गया है। उदाहरण से समझने की कोशिश की जाए, जहां पुरानी प्राविधि में किताबों का एक किलो पैकेट भेजने में लगभग 32 रुपये लगते थे वहीं अब इसके लिए पाठकों को 78 रुपये चुकाने होंगे। और ख़ास बात यह है कि नये में टेरिफ में पंजीकृत पार्सल में आधा किलो तक एक ही दाम है यानी अगर कोई अल्प मूल्य वाली किताब भी पाठक डाक से मंगवाता है तो उसे 42 रुपये देने ही होंगे। एक पुरानी कहावत याद आती है, सोने से अधिक बनवाई महंगी। 16 दिसम्बर को जब कुछ प्रकाशक और लेखक डाकघरों में अपने पैकेट लेकर पहुंचे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि डाक विभाग के कंप्यूटर से पंजीकृत प्रिंटेड बुक्स का वह विकल्प ही ग़ायब है जिसके तहत ऐसे पैकेट जाते थे। डाक विभाग के कर्मचारी भी इसका कारण बताने में पूरी तरह असमर्थ थे। एक दो दिनों में सारी बात समझ आयी कि अब यह सुविधा ही बंद कर दी गयी है।

सोचना चाहिए कि स्वतंत्रता के बाद तत्कालीन भारत सरकार ने जब किताबों के लिए यह विशेष प्रावधान किया था तो उसका यही कारण रहा होगा कि वे लोग देश में पुस्तक संस्कृति और पठन–पाठन को बढ़ावा देने की कोशिश कर रहे थे। असल में पुस्तक पढ़ने की संस्कृति किसी भी समाज को संवेदनशील बनाती है और उसे दुनियावी समझ में मज़बूत करती है। अगर सरकार ही किताबों से पाठकों को दूर करने की नीति पर काम करने लगे तो उस समाज का क्या हाल होगा! नये प्रावधान से हिंदी ही नहीं, सभी भारतीय भाषाओं के पाठकों को परेशानी होगी। यह उन छोटे प्रकाशकों के लिए कड़ी चुनौती बन गया है जो डाक के माध्यम से अपना प्रकाशन व्यवसाय कर रहे थे। सभी छोटे प्रकाशकों के लिए अमेज़न इत्यादि माध्यमों से किताबों भेजना संभव नहीं है। साथ ही ध्यान देना चाहिए कि बेहद महंगी और अविश्वसनीय कोरियर सेवाएं भारत के बड़े शहरों, बड़े ज़िला मुख्यालयों तक तो जाती हैं लेकिन दूर दराज के ग्रामीण अंचलों में उन्हें इन सेवाओं को पहुंचाने में कोई रुचि नहीं। डाक और कोरियर का अंतर यहां समझ आता है जो मुनाफ़े और सामाजिक प्रतिबद्धता का अन्तर है।

इन नये दामों का एक ओर पक्ष दूरस्थ शिक्षा से भी जुड़ता है। देश में राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय सहित अनेक विश्वविद्यालय दूरस्थ शिक्षा प्रदान करते हैं जिसमें विद्यार्थी को समस्त पाठ सामग्री डाक से भेजी जाती है। बढ़ी हुई दरों का सीधा असर निर्धन और वंचित लोगों पर पड़ेगा जो स्कूल–कॉलेज जाकर नियमित कक्षा से पढ़ाई नहीं कर सके। बढ़ी दरों के कारण पाठ सामग्री भेजने में इन संस्थानों को अब विद्यार्थियों से अधिक फीस वसूलनी पड़ेगी जो पहले ही विभिन्न कारणों से शिक्षा लेने से रह गये थे। ध्यान देने की बात यह भी है कि विश्व भर में डाक दरों पर सर्वाधिक जी एस टी भारत में लगाया जाता है, जो कि संपन्न देश भी नहीं करते। आख़िर लाभ कमाने की कोई तो सीमा होगी ?

सरकार के इस क़दम पर सोशल मीडिया में लेखकों पाठकों में गहरी नाराज़गी व्यक्त हुई है। विख्यात कवि बोधिसत्व ने इस बढ़ोतरी पर सोशल मीडिया पर तीखी टिप्पणी में कहा, 'बुक पोस्ट जैसी सर्विस बंद करके जनता को न पढ़ने देने का पूरा प्रबंध कर लिया है। अब बिना लुटे आप पढ़ नहीं सकते! नौ की लकड़ी नब्बे खर्च वाली स्थिति बना दी गयी है। पाठक अब लूट के दायरे में है! सरकार ने लूटने का विधिवत उपाय कर लिया है!' वहीं लेखक और स्वतंत्र टिप्पणीकार दुर्गाप्रसाद अग्रवाल ने लिखा है, 'हमारे यहां पत्रिकाओं व पुस्तकों की सुलभता वैसे ही कम है। जिन्हें पढ़ने लिखने में रुचि है, वे उन्हें प्राप्त करने के लिए डाक व्यवस्था पर ही निर्भर रहते हैं। डाक व्यय बढ़ने का उन पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह बताने की ज़रूरत नहीं है।' राजस्थानी के प्रसिद्ध लेखक श्याम जांगिड़ ने क्षोभ व्यक्त करते हुए लिखा, 'मैं मित्रों को प्रिंटेड बुक्स नियम के अनुसार एक सामान्य वजन की पुस्तक पच्चीस रुपये में भेजता रहा हूं। सबसे बुरा असर हमारे राजस्थानी लेखकों पर होगा। क्योंकि हमें अपनी राजस्थानी किताब मित्र लेखकों को डाक से ही भेजनी होती है । क्योंकि प्रकाशक के यहां से कोई नहीं मंगवाता । अतः हमें प्रकाशन की उपस्थिति खुद ही दर्ज करवानी होती है। अब यह नहीं हो पायेगा, अफसोस! न जाने यह सरकार बुद्धिजीवियों के पीछे क्यों पड़ी है! यह काला क़ानून जनता को जड़ता की ओर धकेलेगा।' नैनीताल की लेखिका और शिक्षक माया गोला ने लिखा, 'तानाशाही के लिए पढ़ने की संस्कृति ख़त्म करना ज़रूरी है।' मैथिली और हिंदी के प्रकाशक गौरीनाथ ने लिखा, 'दरअसल हमारी सरकारों को यह पता चल गया है कि उसकी नीतियों की सर्वाधिक आलोचना लघु पत्रिकाओं और छोटे-छोटे प्रकाशन गृह से निकलने वाली किताबों में ही रहती है। इसलिए इस बार ज़्यादा कठोर क़दम उठाते हुए पत्रिकाओं के साथ किताब, पम्पलेट आदि तमाम मुद्रित सामग्री को भेजी जाने वाली रियायती डाक सेवा ही समाप्त कर दी गयी है। ऐसा करके एक तरफ़ लघु पत्रिकाओं, छोटे प्रकाशन गृहों और छोटे छोटे संगठनों से जारी होने वाली मुद्रित सामग्री पर अंकुश लगाने की तैयारी है, तो दूसरी तरफ़ कॉर्पोरेट घराने की कूरियर सेवाओं को बढ़ावा देने का प्रयास है।'

नयी व्यवस्था की मार उन छोटी पत्रिकाओं पर भी पड़ी है जो बिना विज्ञापनों के धीरे-धीरे निकलती हैं और केवल डाक के सहारे पाठकों तक पहुंचती है। लघु पत्रिका कार्यान्वयन समिति ने ऐसी पत्रिकाओं को एक मंच पर संगठित करने का प्रयास किया है। इन लघु पत्रिकाओं को भी पाठकों तक पहुंचने के लिए डाक का सहारा लेना पड़ता है और अब बड़े दामों के कारण इन पत्रिकाओं को भी मुश्किल होगी। लगातार बढ़ रहे कागज़ और छपाई के मूल्य के बावजूद ये लघु पत्रिकाएं लागत मूल्य पर ही पाठकों तक उच्च स्तरीय साहित्यिक सांस्कृतिक सामग्री पहुंचाती है, नयी व्यवस्था में इन्हें अपने दाम बढ़ाने होंगे या बंद ही कर देना होगा। लघु पत्रिकाओं के आंदोलन से जुड़े लखनऊ निवासी आशीष सिंह ने सोशल मीडिया पर लिखा, 'सच यही है कि सरकारी विज्ञापनों को रोककर भी सरकार लघु पत्रिकाओं को प्रकाशित होने से नहीं रोक पायी। अब अगले क़दम पर डाक सुविधा भी छीनी जा रही है। लघु पत्रिकाओं का गला दबाने की कोशिश का साफ़ मतलब है तब छोटी और सामान्य आवाजों को कोई मंच न मिले अब बस सुनना है, सुनाने की सारी गलियों को रूंधा जा रहा है।' एटा से निकल रही लघु पत्रिका 'चौपाल' के सम्पादक ने कहा, 'हमारी पत्रिकाओं को कोई सरकारी या ग़ैर सरकारी विज्ञापन नहीं मिलता, तब भी अपनी सीमित आय में जी-तोड़ कोशिशों से इन पत्रिकाओं को निकाला जाता है ताकि साहित्य को साधारण लोगों तक कम से कम कीमत में पहुंचाया जा सके। हम प्रेमचंद और निराला के वंशज हैं लेकिन नयी परिस्थितियां लघु पत्रिकाओं का प्रकाशन ही समाप्त कर देगी।' ऐसी ही परिस्थितियों में पिछले दस ग्यारह सालों में अनभै सांचा, शेष, सम्बोधन, पहल, अक्सर, कथन, जतन, समकालीन सृजन, अलाव जैसी अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन बंद हो गया है और अब यह नया संकट बाकी पत्रिकाओं पर भी अंतिम मार करेगा।

इधर किताबों के बढ़ रहे आकर्षण के साथ अनेक छोटे-छोटे सेवा-प्रदाता अपने स्तरों पर डाक द्वारा किताबें दूर दराज़ के पाठकों तक पहुंचाने में लगे हैं। सोशल मीडिया के ऐसे समूहों में दिनकर पुस्तकालय और साहित्यारुषि प्रमुख हैं। मराठी में इस तरह का काम करने वाले सैंकड़ों समूह हैं। छत्तीसगढ़ के कपूर वासनिक लगभग मिशन की तरह जन जन तक किताबें पहुंचाने में जुटे हैं। इन सभी प्रयासों को अब सरकार के नये क़दम से धक्का लगना तय है। गांधीवादी और अम्बेडकरवादी साहित्य के पाठकों के लिए तो डाक ही सबसे सुगम रास्ता था क्योंकि ऐसा साहित्य अभी भी बहुत कम दामों में उपलब्ध करवाने के लिए लोग और संस्थान काम करते हैं। अब इन्हें पुस्तक के मूल्य से अधिक डाक का दाम चुकाना होगा। भारत सरकार को अपने इस फ़ैसले पर पुनर्विचार करना चाहिए ताकि देश भर के पुस्तक प्रेमियों को राहत मिल सके।

81300-72004

केस रिपोर्ट

कोई आदमी आत्महत्या क्यों करता है ?

– अजायब जलालाना
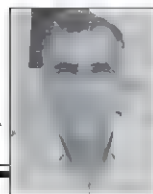
"उम्र 32 वर्ष, हम दो भाई है, हमारे ऊपर कर्ज है, ज़मीन 15 एकड़, पिता जी की हार्ट अटैक के कारण मौत हो गई थी। उन्होंने जिंदगी में संघर्ष किया था।

तीन बहने शादी की, एक बहन के परिवार में भी कर्ज को लेकर अक्सर लड़ाई झगड़ा रहता,जिसके चलते बहनोई ने आत्महत्या के लिये जहर खा लिया, उसके ईलाज में हमारा डेढ़ लाख रु. लग गया उनको तो बचा लिया, परन्तु वह कर्ज हमें सहन करना पड़ा!

अब हमारे घर में सब कुछ ठीक नहीं, कर्जे को लेकर मैं टैंशन में रहता हूँ! और मुझे अकेलापन पसन्द है। हमारी दोनों भाइयों की पत्नियों की तो ठीक बनती है। परन्तु हम दोनों भाई उत्तेजना में रहते हैं,भाई ने सारे परिवार के बज़ट की जुम्मेवारी मेरे ऊपर डाल दी है।

मुझे बात बात पर बहुत गुस्सा आता है, अब मैं विचलित हूँ, कर्ज को कैसे उतारूँ ? और मैं अकेला गुमसुम रहता हूँ, सच मानों मैनें कई बार आत्महत्या करने का फैसला किया,अब कुछ सूझ नहीं रहा।

मेरी माता और घर की महिलाएं बाबाओं, चेलों के चक्करों में डाल रही हैं जो कि वो मुझे ठीक नहीं लगता! परन्तु वो बाबा,चेले सत्य बातें कैसे बता देते हैं ?

मेरे गांव के बहुत सारे लोगों ने ट्रेन के आगे कूदकर आत्महत्याएं की हैं कभी कभी मेरा भी दिल करता है!!

मैं अपनी निमोशी/निराशा को कैसे तोड़ूं ? मैं कर्ज से कैसे निकलूं ? मैं अपनी उदासी से कैसे बाहर निकलूं ?"

उसे चुनौतियों का सामना करने के लिए इस एक ही जीवन का सदुपयोग करने के लिए प्रेरित किया गया।

बजट की समझ और उसे कवर करने के लिए ठोस योजनाएं बनाने की प्लानिंग का सुझाव दिया गया।

अपनी एकांत की जीवनशैली को खत्मकर समाज के साथ मिलजुलकर, मित्रों, रिश्तेदारों और बच्चों के साथ घुलमिल कर रहने के सुझाव दिए गए। अपने क्रोध, गुस्से को शांत करने के कुछ टिप्स भी दिए गए।

बाबाओं, चेलों द्वारा सत्य बातें बताने की कला की सही जानकारी दी गई कि वो कैसे चीटिंग से कुछ बातें सत्य बता देते हैं,उनसे सावधान रहना बताया गया।

आत्महत्या करने वाला इंसान,पहले आत्महत्या कर चुके लोगों की हिस्ट्री, जिज्ञासा के बारे मंथन करता रहता है और उसी के रास्ते चलता रहता है,आखिर विशेष परिस्थितियों में इसे अंजाम दे देता है।

आपको अपनी मां, भाई, बहनों, अपनी पत्नी, बच्चों का ख्याल रखते हुए, इस आत्महत्या जैसे विचार को खत्म करना होगा!

जीवन में आई चुनौतियों का सामना करने के लिए मिली एक ही जिंदगी का आनन्द उठाने के लिए प्रेरित किया गया।

संसार में प्रत्येक इंसान समस्याग्रस्त है इसका मतलब ये नहीं हम आत्महत्या करें! हमें सहजता से सदैव संघर्ष जारी रखना है।

हम अच्छी पुस्तकें पढ़ें, अच्छे दोस्त बनाएं, उनसे अपनी समस्याएं सांझी करें, अपने को क्रिएटिव रखें, मनोविज्ञान के विषय के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानें, और अपने मानवीय कर्तव्यों को समझते हुए खुश रहने की कोशिश करें!

कुछ समय बाद ही उस घर के मुखिया ने उपरोक्त बातों को अपने जीवन में व्यवहारिक तौर पर लागू करके अपने पूरे समस्या ग्रस्त परिवार को सुरक्षित बाहर निकाल लिया और अब पूरी तरह से खुश है। **94167-24331**
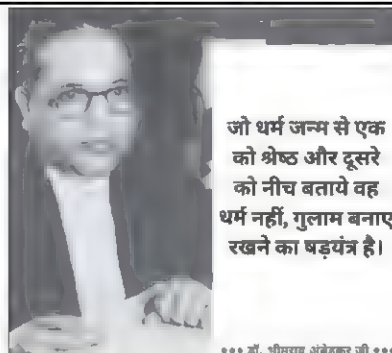
भारतीय समाज में तर्कशीलता की भूमिका

– कृष्ण कायत

भारत एक प्राचीन और विविधता से भरा देश, अपने समृद्ध सांस्कृतिक और सामाजिक विरासत के लिए जाना जाता है। यह समाज परंपराओं, मान्यताओं और रीति-रिवाजों से गहराई से जुड़ा हुआ है। हालांकि, समय के साथ, सामाजिक और आर्थिक बदलावों ने भारत में तर्कशीलता के महत्व को ओर अधिक प्रासंगिक बना दिया है। तर्कशीलता न केवल समाज के सतत विकास के लिए आवश्यक है, बल्कि यह एक प्रगतिशील और न्यायसंगत समाज की नींव भी रखती है। तर्कशीलता (Rationality) किसी भी व्यक्ति के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह न केवल निर्णय लेने की प्रक्रिया को बेहतर बनाती है बल्कि हमारी सोच को भी तर्कसंगत और व्यावहारिक बनाती है। तर्कशीलता का अर्थ है "तथ्यों और प्रमाणों के आधार पर सोचने, समझने और निर्णय लेने की क्षमता"। इस लेख में हम तर्कशीलता को विकसित करने के कुछ सरल और प्रभावी तरीकों पर चर्चा करेंगे।

तर्कशीलता क्यों आवश्यक है ?

तर्कशीलता का विकास हमें अपनी समस्याओं को बेहतर ढंग से समझने और उनका समाधान खोजने में मदद करता है। यह हमें भावनात्मक निर्णयों से बचाता है और हमें यह सिखाता है कि हर परिस्थिति का विश्लेषण तर्क और तथ्य के आधार पर कैसे किया जाए। इसके अलावा, तर्कशीलता से हमें किसी विषय पर गहराई से विचार करने और सही निर्णय लेने में मदद मिलती है।

तर्कशीलता को विकसित करने के तरीके :-

1. सवाल पूछने की आदत डालें

तर्कशीलता का पहला कदम है-सवाल करना। जब आप किसी विचार, तथ्य या सूचना के बारे में सुनते हैं, तो उसके पीछे के कारणों और प्रमाणों को समझने की कोशिश करें। उदाहरण के लिए :

यह क्यों सही है ?

इसका आधार क्या है ?

क्या इस विचार का कोई वैकल्पिक दृष्टिकोण हो सकता है ?

2. पूर्वाग्रहों को पहचानें और दूर करें

हम सभी के मन में कुछ न कुछ पूर्वाग्रह (Bias) होते हैं। तर्कशील बनने के लिए इन पूर्वाग्रहों को पहचानना और उनसे बचने का प्रयास करना आवश्यक है। अपनी सोच को खुले दिमाग से विकसित करें और नई जानकारियों को स्वीकार करें।

3. तथ्यों पर ध्यान दें, भावनाओं पर नहीं

कई बार भावनाएं हमारे निर्णयों को प्रभावित करती हैं। तर्कशील बनने के लिए यह जरूरी है कि आप अपने निर्णय तथ्यों और प्रमाणों के आधार पर लें, न कि भावनात्मक आवेगों पर।

4. आलोचनात्मक सोच (Critical Thinking) को अपनाएं

आलोचनात्मक सोच का अर्थ है किसी भी जानकारी या विचार का गहराई से मूल्यांकन करना। यह दृष्टिकोण आपको तथ्यों का विश्लेषण करने और उनके सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं को समझने में मदद करता है।

5. विभिन्न दृष्टिकोणों को समझें

तर्कशील बनने के लिए जरूरी है कि आप विभिन्न दृष्टिकोणों को समझने और स्वीकारने के लिए तैयार रहें। इससे आप किसी विषय के बारे में अधिक व्यापक और संतुलित दृष्टिकोण बना सकते हैं।

6. अध्ययन और अभ्यास करें

तर्कशीलता कोई ऐसी कला नहीं है जो एक दिन में सीखी जा सके। इसके लिए लगातार अध्ययन और अभ्यास जरूरी है। नई नई किताबें पढ़ें, वैज्ञानिक लेखों का अध्ययन करें और दूसरों के साथ विचार-विमर्श करें।

7. अपनी गलतियों से सीखें

गलतियां करना इंसान की फितरत है, लेकिन उनसे सीखना ही तर्कशीलता का आधार है। अपनी सोच और निर्णयों का पुनर्मूल्यांकन करें और यह समझने की कोशिश करें कि आप बेहतर तरीके से क्या कर सकते थे।

तर्कशीलता के लाभ

1. सही निर्णय लेने की क्षमता : तर्कशील व्यक्ति

अपने जीवन में सही और व्यावहारिक निर्णय ले पाता है।

2. समस्याओं को हल करने की दक्षता : यह सोचने की क्षमता विकसित करता है कि समस्याओं को किस तरह हल किया जाए।

3. भावनात्मक संतुलन : तर्कशीलता व्यक्ति को भावनात्मक आवेगों पर काबू पाने में मदद करती है।

4. व्यक्तिगत और सामाजिक सुधार : तर्कशील व्यक्ति समाज में सकारात्मक योगदान देता है और दूसरों के विचारों को समझने और उनका सम्मान करने की आदत डालता है।

निष्कर्ष

तर्कशीलता एक ऐसी योग्यता है, जिसे किसी भी उम्र में विकसित किया जा सकता है। इसके लिए केवल यह जरूरी है कि आप खुद को हर स्थिति में सीखने और सोचने के लिए तैयार रखें। यह केवल आपकी व्यक्तिगत प्रगति में ही नहीं, बल्कि समाज और देश की उन्नति में भी योगदान देती है। इसलिए, आइए, तर्कशीलता को अपने जीवन का हिस्सा बनाएं और अपने जीवन को ओर भी बेहतर बनाएं।

''तथ्य और तर्क के साथ निर्णय लें, क्योंकि यही वह चाबी है जो आपको सफल और संतुलित जीवन की ओर ले जाएगी।''

98961-05643

मुझे नहीं पता

जज ने मिस्र के पूर्व राष्ट्रपति अनवर सादात के हत्यारे से पूछा, तुमने सादात को क्यों मारा?

उन्होंने उत्तर दिया, ''क्योंकि वह एक धर्मनिरपेक्ष तत्व थे!''

न्यायाधीश ने पूछा: ''धर्मनिरपेक्ष होने का क्या मतलब है?''

हत्यारे ने कहा: ''मुझे नहीं पता!''

-o-

मिस्र के दिवंगत नोबेल पुरस्कार विजेता नागुइब महफूज की हत्या के प्रयास के मामले में, न्यायाधीश ने नागुइब महफूज को चाकू मारने वाले व्यक्ति से पूछा: ''तुमने उसे चाकू क्यों मारा?''

उस आतंकवादी ने कहा: ''उनके उपन्यास के कारण - 'अवर नेबरहुड चिल्ड्रेन'।''

न्यायाधीश ने उससे पूछा: ''क्या तुमने यह उपन्यास पढ़ा है?''

अपराधी ने कहा: ''नहीं!''

-o-

एक अन्य न्यायाधीश ने मिस्र के लेखक फ़राज़ फ़ौदा की हत्या करने वाले आतंकवादी से पूछा: ''तुमने फ़राज़ फ़ौदा को क्यों मारा?''

आतंकवादी ने उत्तर दिया: ''क्योंकि वह देशद्रोही था!''

न्यायाधीश ने उससे पूछा: ''तुम्हें ऐसा क्यों लगा कि वह देशद्रोही है?''

आतंकवादी ने उत्तर दिया: ''उन पुस्तकों के कारण जो उसने लिखीं।''

न्यायाधीश ने कहा: ''उनकी कौन सी किताब ने आपको यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि वह देशद्रोही थे?''

आतंकवादी: ''मैंने उसकी कोई किताब नहीं पढ़ी है!''

जज: ''तुमने पढ़ा क्यों नहीं?''

आतंकवादी ने उत्तर दिया: ''क्योंकि मैं पढ़ना-लिखना नहीं जानता!''

जाहिर है नफरत कभी ज्ञान से नहीं फैलती. यह हमेशा अज्ञानी प्रचार से फैलता है!

इस प्रकार अज्ञानता की कीमत समाज नफरत के रूप में चुकाता है

अंधविश्वास, रूढ़िवाद व तमाम कुरीतियों के खिलाफ आवाज बुलंद करें और बेहतर समाज बनाने के लिए संघर्ष करें।

'चमत्कार' का खुलासा

जैसलमेर के एक गांव में बोरवेल से अपने आप पानी निकलने लगा। कुछ लोग इसे चमत्कार बताने लगे।

एक वीडियो में अपने आप को भूवैज्ञानिक कहने वाले एक व्यक्ति ने बोल दिया कि ये सरस्वती नदी हो सकती है। कोई इसे दैवीय शक्ति भी बताएगा व पूजास्थल स्थापित कर देगा। एक भूवैज्ञानिक द्वारा ऐसे बचकाने दावे कर देना निंदनीय है। उसने जानबूझकर राजनीतिक व धार्मिक आकाओं की सन्तुष्टि के लिए ऐसा कहा जबकि उसे अच्छी तरह पता है कि ये एक सामान्य घटना है।

जब पृथ्वी के अंदर की परतें तश्तरी जैसी होती हैं तो पानी का दबाव नीचे वाले हिस्से पर बढ़ जाता है। जैसे ही उस परत को नीचे वाले हिस्से से तोड़ा जाता है तो पानी तेजी से निकलने लगता है। आस्ट्रेलिया में ऐसे बहुत से बोरवेल हैं जो Artesian Well के नाम से जाने जाते हैं।

-तुलसी राम नास्तिक

''तर्कशील समूह बिहार/झारखंड'' वाट्सएप ग्रुप का हिन्दी भाषी राज्यों तक विस्तार

संविधान को धता बताते हुए, अवैज्ञानिक सोच, अंधश्रद्धा एवं अंधविश्वास को सत्ता व्यवस्था, बाजार की ताकतों एवं धर्म के धंधेबाजों द्वारा मिल रहे हर संभव प्रोत्साहन, संरक्षण के मौजूदा कठिन दौर में भी देश में वैज्ञानिक/तर्कशील चेतना अभियान को आगे बढ़ाने के लिए हर संभव प्रयासों का सिलसिला जारी है। देश के विभिन्न संगठन, संघर्षरत समूह एवं विज्ञान/जन संचारक इस दिशा में अपने अपने ढंग से प्रयासरत हैं। भारतीय संविधान के 75 वर्ष हो गए तथा इस बीच देश दुनिया में विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। भारतीय संविधान ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास को नागरिकों का मौलिक कर्तव्य निरूपित किया है। संविधान के अनुच्छेद 51ए (एच) के अनुसार ''भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।'' पर अवैज्ञानिक, प्रतिगामी सोच वाली धर्मांध, सांप्रदायिक फासीवादी ताकतों द्वारा संविधान की मूल भावना की अनदेखी कर समाज में भेदभाव, वैमनस्यता, धर्मांधता, संकीर्णता, असहिष्णुता, नफरत और हिंसा फैलाने एवं समाज को विभाजित करने का हर संभव प्रयास किया जा रहा है। ऐसे में जरूरी है कि देश की आजादी के लिए दी गई शहीदों की कुर्बानियों का सम्मान करते हुए सभी प्रकार के भेदभाव से मुक्त, समावेशी, संविधान सम्मत, समतामूलक, धर्मनिरपेक्ष, विविधतापूर्ण, न्यायपूर्ण एवं श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों पर आधारित बेहतर समाज व देश के निर्माण के लिए हर संभव प्रयास किया जाए तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण संपन्न, उदार, सहिष्णु, तर्कशील, प्रगतिशील, विकसित, आधुनिक व आत्मनिर्भर भारत के निर्माण का सपना साकार किया जाए।

उल्लेखनीय है कि लोगों को धर्मांधता से मुक्त कर उनमें तर्कशील, वैज्ञानिक चेतना के विकास एवं विस्तार के लिए साइंस फॉर सोसायटी, झारखंड ने 26 अक्टूबर 2024 को ''तर्कशील समूह बिहार/झारखंड'' का गठन किया था जिसने एक ठोस स्वरूप ग्रहण कर लिया है। जन विज्ञान/ तर्कशील आंदोलन के साथियों से विचार -विमर्श कर तथा जरूरत महसूस करते हुए अब उसका विस्तार ''हिंदी भाषी राज्यों'' तक किया जा रहा है। वैसे उसमें रेशनल मूवमेंट के देश भर के प्रमुख व्यक्तियों को शामिल किया जाएगा, ताकि विभिन्न राज्यों में चल रहे तर्कशील आंदोलन के अनुभवों का आपस में आदान प्रदान किया जा सके।

इस वाट्सएप ग्रुप में आप सादर आमंत्रित हैं। हिंदी प्रदेशों के लिए प्रस्तावित तर्कशील समूह के गठन को लेकर आपका बहुमूल्य सुझाव एवं आपकी भागीदारी प्रार्थनीय है।

डी एन एस आनंद
महासचिव (साइंस फॉर सोसायटी), झारखंड
संपादक
(वैज्ञानिक चेतना साइंस वेब पोर्टल,
जमशेदपुर, झारखंड)

2 फरवरी 2025 को कुरुक्षेत्र में तर्कशील सोसायटी हरियाणा की द्वि मासिक मीटिंग एंव सेमिनार का आयोजन किया गया। जिसमे राज्य भर से तर्कशील कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। यह सेमिनार तर्कशील विषयों के साथ ही मास्टर बलवंत सिंह को समर्पित था जिनका 31 जनवरी 2025 को निधन हो गया था।

इस अवसर पर उनके परिवार के सदस्यों सहित तर्कशील मौजूद थे। इस अवसर पर बलवंत सिंह द्वारा लिखित किताब ''अंधविश्वासों का मनोविज्ञान'' का विमोचन किया गया। कॉमरेड राजविंदर सिंह चंदी ने तर्कशील विषयों पर अपना भाषण दिया, जिसे श्रोताओं ने बड़े चाव से सुना। इस अवसर पर प्रसिद्ध कवि जयपाल भी मौजूद थे। सचिव बलजीत भारती ने मंच सचिव की भूमिका निभाई। अध्यक्ष राजेश पेगां ने मीटिंग का समापन किया। रामेश्वर आजाद, पलविंदर सिंह, अश्वनी और सुभाष ने मीटिंग से संबंधित सभी व्यवस्थाएं कीं।

रिपोर्ट-बलजीत भारती

अंधविश्वास के कारण जीभ काटने, अंग भंग करने, बलि की घटनाएं

- डॉ दिनेश मिश्र

सक्ती जिले में मन्दिर में जीभ काटकर चढ़ाने का मामला सामने आया है। डभरा ब्लॉक के ग्राम देवरघटा में शिव मंदिर में एक 16 साल की लड़की ने शिवलिंग पर अपनी जीभ को काटकर चढ़ा दिया। लड़की को देखने के लिए ग्रामवासी और आस पास के लोगों की भीड़ जुट रही है. यह मंदिर देवरघटा के सोंठी पारा में स्थित है। इसके पहले पिछले दिनों बलरामपुर जिले के एक व्यक्ति कमलेश नगेशिया ने अपने 4 वर्ष के बच्चे की बलि दे दी। उसके कुछ दिनों पहले नवरात्रि में भी कोरिया जिले में एक धनेश्वर नामक बालक की बलि का मामला सामने आया था। अंधविश्वास के कारण यह घटनाएं अत्यंत दुखद है। ग्रामीणों को अंधविश्वास नहीं करना चाहिए एवं कानून को हाथ में नहीं देना चाहिए।

अंधविश्वास में पड़ कर व्यक्ति मानसिक रुप में असंतुलित हो जाता है और वह मिथकों पर पूरी तरह भरोसा करने लगता है। कही सुनी किस्से कहानियां, भ्रामक खबरें, अफवाहें उसे ओर भी भ्रमित कर देती हैं और वह अपराध कर बैठता है। लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित करने की आवश्यकता है जिससे लोग सुनी सुनाई घटनाओं अफवाहें और भ्रामक खबरों पर भरोसा ना करें और अंधविश्वास में ना पड़े। कुछ मामलों में व्यक्ति किसी इष्ट, देवी, देवता का सपना आने और सपने में बलि मांगने की बात भी कहते हैं। और कहते हैं कि उन्होंने उनके आदेश पर किसी की बलि/कुर्बानी दे दी है जबकि लोगों को यह सोचने की आवश्यकता है कि किसी की जान लेकर कर कोई भी व्यक्ति सफल नहीं हो सकता और उसे अपराध करने के करण अंततः जेल जाना पड़ता है।

अंधविश्वास के करण जो व्यक्ति मानसिक उद्वेग में चला जाता है तब वह कई बार स्वयं के अंदर किसी अदृश्य शक्ति में प्रवेश होने की बात भी करता है तथा वह किसी के सपने में आने या किसी के आदेश देने या कानों में आवाज सुनाई पढ़ने की बातें भी करता है जबकि यह एक प्रकार का मानसिक विचलन का ही कारण है, यह एक प्रकार का मासिक असंतुलन का प्रतीक है और बहुत सारे लोग बहुत संवेदनशील होते हैं और वह भावावेश में आकर कानून हाथ में लेते हैं, इनमें से कुछ लोग सार्वजनिक रुप से भी असंतुलित व्यवहार भी प्रकट करते हैं जैसे झूमना, बड़बड़ाना मारना पीटना आदि।

इस तरह की भक्ति भावना से कोई कभी खुश नहीं होता है। न ही शास्त्रों में इस तरह की कोई विधि बताई गई है। किसी जीव की बलि देना या अपना कोई अंग काटकर चढ़ाना अंधविश्वास है। इसे कानूनी अपराध भी माना गया है। हमारे शरीर के कई महत्वपूर्ण अंग है, लोग अपनी जीभ, उगली, काटकर धार्मिक स्थल में समर्पित करते हैं इसके बाद जीवनभर के लिए अपंग हो जाते हैं। ऐसे में किसी चिकित्सक को किसी को दिखाया जाए उसका उपचार हो ,उसकी सभी तरह से काउंसलिंग की जाए तो व्यक्ति ठीक हो जाता है. और समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है

अध्यक्ष (अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति)

किताबें जलाने की धमकी के बाद पुस्तक मेला रद्द

अब पुस्तक मेले से भी तथाकथित ''भावनाएं'' आहत होने लगी हैं। 'इंडियन एक्सप्रेस' के अनुसार बारहवां पुस्तक मेला ''किताब कौतुक'' के नाम से पौड़ी गढ़वाल सेंट्रल यूनिवर्सिटी में होने वाला था। इसमें करीब 70 हजार किताबों में से अपनी पसंद की पुस्तकें पाठक खरीद सकते थे, देख सकते थे, छू सकते थे मगर संघ परिवार ने यह सुनिश्चित किया कि इस प्रदेश की जनता इससे वंचित रहे। संघ हमेशा से किताबों से डरता आया है, विरोधी विचारों से कांपता आया है,हालांकि तथाकथित बौद्धिक का आयोजन न जाने कब से वह करता आ रहा है। संघ परिवार को डर था कि इसमें कम्युनिस्ट विचारधारा की किताबें भी होंगी और इनसे हिंदुओं की ''धार्मिक भावनाएं'' आहत होंगी।

इस बहाने सबसे पहले पौड़ी गढ़वाल के श्रीनगर में सरकारी गर्ल्स इंटरकालेज में जनवरी महीने में यह मेला संघ ने

शेष पृष्ठ 47 पर

नींबू-मिर्च लटकाना-अंधविश्वास का प्रतीक

एक नींबू के साथ ऊपर और नीचे पांच या सात मिर्च धागे से बंधे बहुत से घर, दुकान व दफ्तर की चौखट पर लटके आपको देखने को मिल ही जाएगा।

नींबू-मिर्च लटकाने वालों का मानना होता है कि नींबू-मिर्च बुरी आत्मा व किसी की बुरी नजर से बचाते हैं। अब आप थोड़ा से तर्क लगाइए क्या कोई बुरी आत्मा या बुरी नजर है? कोई बुरी आत्मा नहीं होती। बुरी आत्मा होती तो आज तक वैज्ञानिक उस आत्मा को खोज निकाल चुके होते।

न कोई बुरी नजर होती है। किसी की भी नजर बुरी नहीं होती हैं। अगर किसी व्यक्ति की नियत चोरी या डाका करना है, तो उसे नींबू-मिर्च से बंधे ठुवे रोक नहीं पाएगा और न ही रोका हैं। आए दिन सुने मकान में चोरी या दुकान से नगदी चोरी के मामले उसी घर और दुकान से सुनने में मिलती है।

इस अंधविश्वास के कारण नींबू मिर्च की कीमत बढ़ गई हैं। हर रोज नींबू-मिर्च खरीदकर पुराना की जगह पर नया लटकाना। रोज सुबह-सुबह रोड, गली और रास्ते पर सुखा नींबू मिर्च फेंके देखने को मिल ही जाएंगे। अंधविश्वासी राहगीर इससे बचने के चक्कर में आए दिन दुर्घटना का शिकार हो जाते हैं। इस महंगाई से लोग खाने के लिए नींबू-मिर्च नहीं खरीद पा रहे, लेकिन अंधविश्वास के लिए अपनी जेब ढ़ीली कर रहे हैं। साथ ही अंधविश्वासी होने का परिचय दे रहे हैं।

नींबू लटकाने की शुरुआत एक अंधविश्वासी से हुई थी। अक्सर बिना विवेक के लोग भेड़ धसान चलते हैं। एक कुछ करें तो बिना सोचे-समझे उसके पीछे चलते हैं।

एक बार एक व्यक्ति बहुत बीमार पड़ता था। तब वह आयुर्वेदिक डॉक्टर के पास गए। तब चिकित्सक ने उसे रोज नींबू मिर्च खाने की सलाह दी। वह व्यक्ति रोज नींबू मिर्च खरीदकर खाता और जो बच जाता उसे घर के चौखट पर लटका देता। नींबू से विटामिन सी और मिर्च से विटामिन ए मिलने लगा और वह स्वस्थ हो गया। यह देखकर उसके पड़ोसी भी इसकी नकल करने लगा। वह भी रोज नींबू मिर्च खरीदकर चौखट से लटकाता। इस प्रकार यह अंधविश्वास का दौर शुरू हुआ। इसलिए किसी भी चीज को अपनी बुद्धि की कसौटी में कसिए फिर वह काम करिए।

काले कम्बल वाले कथित बाबा के तथाकथित स्वास्थ्य शिविरों पर रोक लगे

अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति के अध्यक्ष डॉ दिनेश मिश्र ने कम्बल वाले बाबा के तथाकथित शिविरों पर रोक लगाने की मांग जिला कलेक्टर को पत्र लिख कर की है।

डॉ मिश्र ने कहा पिछले कुछ समय से अहमदाबाद (गुजरात) के पास के एक व्यक्ति गणेश यादव जो कि स्वयं को कम्बल वाले बाबा के नाम से प्रचारित करता है तथा अपने कम्बल को मरीजों को ढाँकने से, झाड़-फूँक करने से, मनुष्यों की बीमारियों को ठीक करने की बात प्रचारित करता है तथा वह अनेक स्थानों पर ऐसे शिविरों का आयोजन करता है, इस प्रकार के शिविर संदेहास्पद हैं।

चिकित्सा विज्ञान इस प्रकार के दावों को सत्य नहीं मानता तथा विज्ञान के अनुसार भी किसी भी बीमारी का उपचार इस प्रकार कम्बल ओढ़ाने, विभिन्न प्रकार से झाडफूँक करने, हाथ-पैर मोड़ने, पटकने, धक्का देने से संभव नहीं है और न ही इस प्रणाली को चिकित्सा विज्ञान ने मान्यता दी है। इस प्रकार के उपचारों से अशिक्षित और ग्रामीण अँचल के ऐसे लोग जो स्वास्थ्य सुविधाओं से वंचित हैं, अपने उपचार के लिए चले जाते हैं जो स्वास्थ्य एवं मानसिक रूप से ठगे जाते हैं।

और वैसे भी ठंड के मौसम में इस प्रकार पीड़ितों का मजमा लगा कर उपचार करने की बात अनैतिक व हास्यास्पद भी है.

इंडियन ड्रग एंड मेजिक रेमेडी एक्ट 1954 के तहत ऐसी 54 बीमारियों जिसमें डायबिटीज, ब्लड प्रेशर, विकलांगता शामिल हैं, का इस प्रकार तथाकथित झाडफूँक से उपचार करना तथा उसका प्रचार करना कानूनी अपराध है।

हमने पहले भी इस प्रकार के शिविर पर रोक लगाने की मांग की थी जिस पर संज्ञान लेते हुए सरगुजा, बलौदाबाजार के जिला प्रशासन ने उक्त बाबा के तथाकथित शिविरों पर जांच और रोक लगाने की कार्यवाही की है। हमारी मांग है कि कम्बल वाले बाबा उर्फ गणेश यादव के सभी तथाकथित स्वास्थ्य शिविरों पर प्रतिबंध लगाया जाये ताकि क्षेत्र की भोली भाली जनता को अंधविश्वास, ठगी से और धोखाधड़ी से बचाया जा सके।

- डॉ. दिनेश मिश्र
नेत्र विशेषज्ञ
अध्यक्ष, अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति

जलियांवाला बाग के शहीदों की याद में

-तुहिन

13 अप्रैल 1919 में हुए जलियांवाला बाग नृशंस हत्याकाण्ड के 106 वर्ष गुजर गए हैं। असंख्य स्वतंत्रता संग्रामी क्रान्तिकारियों के बलिदान से मिली औपचारिक आजादी को भी 78 वर्ष पूरे हो गए हैं । यह भारत के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में करीब 100 वर्ष पूर्व की घटना के विश्लेषण का एक विनम्र प्रयास है ।

प्रथम विश्व युद्ध और भारत

सन् 1914 के बीचोंबीच प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत होती है । दुनिया के बाजार पर कब्जे के लिए साम्राज्यवादी ताकतों के बीच की होड़ और आपसी छीनाझपटी ही विश्व युद्ध का कारण था। जर्मनी के खिलाफ ब्रिटेन द्वारा युद्ध की घोषणा करने के साथ ही भारत जैसे उसके उपनिवेश भी युद्ध की आग से बच नहीं सके थे। इस युद्ध की चपेट में भारत स्वेच्छा से नहीं आया था । भारत पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का शासन होने के कारण यहां की सेना को उनकी तरफ से युद्ध में लड़ना पड़ा था। बहरहाल, इस युद्ध में भारत का योगदान कुछ कम नहीं था। फ्रान्स से लेकर चीन तक विस्तृत रणक्षेत्र में दस लाख से अधिक भारतीय सैनिक लड़े थे। प्रति दस घायल या मृत सैनिकों में एक भारतीय था । इस युद्ध में कुल 17 करोड़ 70 लाख पौण्ड का खर्च आया था और इससे भारत पर राष्ट्रीय ऋण 30 प्रतिशत तक बढ़ गया था, जिसका पूरा बोझ भारत की आम जनता को सहन करना पड़ा था ।

सन् 1914 के दिसम्बर माह में आयोजित कांग्रेस के मद्रास महाधिवेशन में भारत सम्राट और ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति वफादारी प्रदर्शित कर प्रस्ताव पारित किया गया। उस समय महात्मा गांधी गुजरात के खेड़ा में घूम-घूमकर प्रत्येक गांव से कम से कम 20 समर्थ पुरुषों को ब्रिटिश फौज में शामिल होने का आह्वान कर रहे थे । उन्होंने जनता के प्रति अपनी अपील को गौरवान्वित और महिमामंडित करने के उद्देश्य से "स्वराज के लिए त्याग करने" (Sacrifice for Swaraj) को कहा था ।

युद्ध के बाद की परिस्थिति और अंग्रेजों का विश्वासघात

प्रथम विश्व युद्ध, जो 1914 से 1918 तक चला था, के अन्त में उत्पादन के क्षेत्र में बड़ी मन्दी छा गई। कल कारखाने बन्द हो गए, लोगों का रोजगार छीनने लगा -- चारों ओर औद्योगिक संकट अपने पंजे फैलाने लगा । ब्रिटिश सरकार ने टैक्स बढ़ा दिया। महंगाई बहुत बढ़ गई। ब्रिटिश साम्राज्य के अनुगत व्यापारियों की तो चाँदी हो गई थी। गरीब जनता की हालत ओर अधिक खराब हो गई।

विश्व युद्ध की आग में जबरदस्ती झोंके जाने के कारण और युद्ध के दरम्यान असंख्य भारतीय सैनिकों की मौत ने देशवासियों को आक्रोशित कर दिया था। युद्ध से लौटकर आने वाले सैनिक पहले की तरह अपनी वफादारी ब्रिटिश सरकार के प्रति नहीं दिखा पाए । इधर तुर्की के प्रति ब्रिटिश साम्राज्य का रूख तथा खिलाफत आन्दोलन के सवाल पर भारतीय मुसलमानों में भी अंग्रेजों के प्रति असंतोष फैलने लगा था। इधर अंग्रेजों ने विश्व युद्ध के पूर्व भारतवासियों से किए गए सारे वायदे भुला दिए। उसने जनता के अंसतोष को दबाने के लिए प्रशासनिक सुधार के नाम से 1918 में 'माटेग्यू-चेम्सफोर्ड' प्रशासनिक सुधार कानून लाया। लेकिन यह असल में स्वायत्त शासन के नाम पर जनता को ठगा जा रहा था।

स्वायत्त शासन के नाम पर असली सत्ता अंग्रेजों के पास ही रहनी थी। लेकिन इस पहल के प्रति कांग्रेस में एक मोह था। गांधीजी ने इसे सीधे-सीधे नकारने की जगह सहानुभूति के साथ विवेचना करने को कहा था। इसके साथ ही साथ, तीव्र दमन-पीड़न चल रहा था । देशवासियों की अपेक्षा थी कि युद्ध के दरम्यान लागू "डिफेन्स आफ रियालम एक्ट" (Defence of Realm Act) या "डोरा" तथा "डिफेन्स आफ इंडिया एक्ट" (Defence of India Act) को युद्ध की समाप्ति के बाद वापस ले लिया जाएगा । मगर ऐसा हुआ नहीं। इन्हीं कानून को कठोरता से लागू करने के लिए 'रौलेट एक्ट" लाया गया, जिससे लोग ओर भी क्रोधित हो गए।

असल में, 1917 में रूस में सर्वहारा क्रान्ति के जरिए दुनिया का पहला समाजवादी देश सोवियत संघ अस्तित्व में आया था। अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति का प्रभाव दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों के साम्राज्यवाद-विरोधी राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों पर पड़ना शुरू हुआ। अंग्रेज, रूस की बोल्शेविक क्रान्ति से उठे तुफान से डरने लगे ।'मान्टेग्यु-चेम्सफोर्ड' की रिपोर्ट में कहा गया कि "रूस की बोल्शेविक क्रान्ति ने भारतवासियों के राजनैतिक चेतना को गहराई से प्रभावित किया है।" ब्रिटिश सरकार के गुप्तचर विभाग के तत्कालिन प्रमुख के. सिसिल ने कहा कि "इस बात में कोई संदेह नहीं है कि रूस का बोल्शेविकवाद कई देशों के क्रान्तिकारी आन्दोलन को प्रभावित कर रहा है और भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन को तो विशेष रूप से प्रेरित कर रहा है।" इंग्लैण्ड के गृहसचिव मैकफार्सन को सौंपे अपने रिपोर्ट में उन्होंने लिखा है कि "कई लोगों का मानना है कि उत्तर प्रदेश की किसान सभा और बंगाल की रैयत सभा पूरी तरह बोल्शेविकपंथी हैं ।..... भारतवर्ष में क्रान्ति, लेनिन की चाहत है, लेकिन मुझे लगता है कि लेनिन चाहते हैं भारत में विक्षोभ आन्दोलन अपने स्वयं की गति से आगे बढ़े।"

ब्रिटिश साम्राज्य विश्व में समाजवाद की अग्रगति से तथा भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन के तेज होने से परेशान था। इसलिए उसने प्रबल दरिद्रता के शिकार और निस्सहाय आक्रोशित जनता के खिलाफ कठोर दमन नीति का सहारा लिया ।इसी समय गांधीजी ने सत्याग्रह का आह्वान किया ।

सत्याग्रह और पंजाब

1918-19 में पंजाब में अनावृष्टि (सूखा पड़ने) से किसानों को बहुत नुकसान हुआ। विभिन्न क्षेत्रों में प्लेग बीमारी ने महामारी का रूप ले लिया। 4 5 महीनों में इन्फुएंजा से भी बहुत से लोग मारे गए। साथ ही साथ, कई बहानों से ब्रिटिश सरकार अत्याचार तेज करते जा रही थी। 1913 में माइकल-ओ-डायर के पंजाब के गवर्नर नियुक्त होने के बाद अत्याचार बढ़ता ही जा रहा था ।माइकल-ओ-डायर ने पंजाब में लोकमान्य तिलक और विपिनचन्द्र पाल के प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया था। 'न्यू इंडिया', 'अमृत बाजार पत्रिका', 'इंडिपेंडेट' सहित कई समाचारपत्रों के प्रसारण पर रोक लगा दिया। डायर ने गदर आन्दोलन का निर्मम दमन किया। इन अत्याचारों से पंजाब की जनता का आक्रोष कम होने के बजाय, बढ़ता ही गया। इसी आक्रोश की अभिव्यक्ति सत्याग्रह आन्दोलन में देखने को मिली ।

गांधीजी के आह्वान पर पहले हड़ताल का दिन 30 मार्च 1919 को तय हुआ था। बाद में उसे बदलकर 6 अप्रैल कर दिया गया। भारत में वह समाचार न पहुंचने के कारण, कई जगहों पर जनता ने 30 मार्च को ही हड़ताल कर दिया। अमृतसर में 30 मार्च को पूरे शहर में हड़ताल थी। 35000 लोगों की एक विशाल आम सभा को लोकप्रिय नेता डाक्टर सैफुद्दिन किचलू ने सम्बोधित किया और जनता से शान्ति बनाए रखने की अपील की। पंजाब सरकार ने बदले की कार्यवाही करते हुए डा. सत्यपाल एवं डा. किचलू पर आम सभा में बोलने पर प्रतिबंध लगा दिया।

6 अप्रैल 1919 को पूरे देश में हिन्दू मुसलमान समेत तमाम समुदायों के लोगों ने एकजुट होकर हड़ताल को सफल बनाया ।मजदूर किसान सहित आम जनता ने बड़े जोशोखरोश से सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया ।आम हड़ताल से पंजाब का जनजीवन थम-सा गया ।बैरिस्टर बदरूल इस्लाम खाँ की अध्यक्षता में अमृतसर में 50000 लोगों की बड़ी आम सभा आयोजित हुई। जनता स्वतःस्फूर्त रूप से और शान्तिपूर्ण तरीके से आन्दोलन में भाग ले रही थी। राष्ट्रीय चेतना के इस नव जागरण से माइकल ओडायर बहुत परेशान हो गया तथा पंजाब के लोगों को सबक सिखाने के लिए मौका ढूंढने लगा ।

हड़ताल के दिन देश के विभिन्न स्थानों पर आन्दोलनकारियों के साथ पुलिस की झड़प हुई। दिल्ली में पुलिस गोलीचालन से हिन्दू-मुसलमान दोनों सम्प्रदाय को लोग हताहत हुए। गोलीचालन की खबर सुनकर गांधी जी दिल्ली की ओर रवाना हुए, मगर उन्हें रास्ते में ही गिरफ्तार कर मुम्बई भेज दिया गया। गांधीजी की गिरफ्तारी के समाचार से जनता उद्वेलित हो उठी। आन्दोलनरत जनता पर पुलिस ने निर्मम लाठी-चार्ज किया।

अशान्त पंजाब

आन्दोलन क्रमशः तेज होने लगा। गांधीजी समझ गए कि उनके अहिन्सक सत्याग्रह की लगाम अब उनके हाथ से निकलती जा रही है। अचानक ही उन्होंने तीव्र जन आन्दोलन के ज्वार को रोकने के लिए सत्याग्रह स्थगित करने की घोषणा की। लेकिन जिस तरह वेगवान नदी के जल को रोकना बहुत मुश्किल होता है, उसी तरह तीव्र जन आन्दोलन को रोकना ओर भी तकलीफदेह हो जाता है। आन्दोलन की तीव्रता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि बिना किसी अपराध के लोकप्रिय जननेता डा. सत्यपाल और डा. किचलू को गिरफ्तार

करने के आदेश के खिलाफ विद्यार्थियों समेत अमृतसर की जनता ने प्रबल प्रतिरोध किया। पुलिस ने विद्यार्थियों के शान्तिपूर्ण प्रदर्शन पर गोलियां चलाई। जनता ने अपने नेताओं की गिरफ्तारी के खिलाफ अमृतसर के डिप्टी कमिशनर के घर के सामने धरना-प्रदर्शन के लिए जुलूस निकाला। उस जुलूस पर भी पुलिस ने गोलियां चलाई। तब जनता का धैर्य चूक गया और शान्तिपूर्ण जनता उत्तेजित होकर रेल पटरियों को उखाड़ने लगी, टेलीग्राफ के तार काटने लगी तथा बैंक सहित कई सरकार कार्यालयों को आग में भस्म कर दिया। अमृतसर में हवाई जहाज से सेना ने आन्दोलनकारियों पर बम फेंके तथा मशीनगन से गोलियों की बौछार की। इससे कई लोग हताहत हुए, लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य अमृतसर की जनता को डरा नहीं सका। अमृतसर में फौज उतारी गई। जालंधर फौजी छावनी से एक ब्रिगेड के कमान्डर ब्रिगेडियर जनरल रेजीनाल्ड एडवर्ड हैरी डायर को अमृतसर भेजा गया। उस समय शहर में फौज हर घर में घुसकर तलाशी ले रही थी, जिसे चाहे गिरफ्तार कर रही थी, यातनाएं दे रही थी। अमृतसर पूरी तरह एक फौजी छावनी बन चुका था । फौज ने महिलाओं और बच्चों को भी नहीं बख्शा। 11 अप्रैल 1919 की दोपहर को पंजाब चैम्बर ऑफ कॉमर्स के डिप्टी चेयरमेन लाला गिरधारी लाल कपूर कानपुर से कलकत्ता मेल में अमृतसर पहुंचे। उन्होंने देखा कि स्टेशन पर कहीं कोई कुली नहीं है, कोई यात्री नहीं है। चारों तरफ सिर्फ फौज और पुलिस के सिपाही रेल्वे स्टेशन और पटरियों पर पहरा दे रहे हैं। लालाजी बड़ी मुश्किल से फुट ओवरब्रिज तक पहुंचे । वहां भी देखा तो अंग्रेज सिपाहियों का कड़ा पहरा था। वे किसी भी व्यक्ति की पूरी तलाशी लिए बिना शहर में घुसने नहीं दे रहे थे । शहर के बाहरी ओर हर रास्ते हर मोड़ पर रायफल और संगीन लिए फौज और पुलिस तैनात थी। पूरा शहर एक युद्ध क्षेत्र लग रहा था। पूरे अमृतसर में पानी और बिजली की आपूर्ति बन्द कर दी गई थी। ऐसी परिस्थिति में 1919 के 13 अप्रैल को वह खूनी शाम आई ।

खून से सना जलियांवाला बाग

13 अप्रैल 1919 की सुबह जनरल डायर ने सभा-समावेश पर प्रतिबंध लगा दिया। लेकिन प्रतिबंध का समाचार कई क्षेत्रों में नहीं पहुंच पाया। विशेष रूप से शहर के केन्द्र स्थल, स्वर्ण मंदिर क्षेत्र के लोगों को इस बारे में कोई जानकारी नहीं थी। वह दिन रविवार था, साथ में बैशाखी का दिन था। पंजाब में वैशाखी का त्योहार नई फसल की खुशी में जोरशोर से मनाया जाता है। इस दिन प्रदेश के हर जगह से किसान आकर बड़े शहरों में जुटते हैं । सिक्खों के लिए यह वह पवित्र दिन है जब खालसा का जन्म हुआ था। इसीलिए उस दिन स्वर्णमंदिर और उसके आसपास कितने लोग इकट्ठे हुए थे, उसका हिसाब नहीं है। बहुत सारे तो स्वर्णमंदिर के पवित्र सरोवर में डूबकी लगाने आए थे। उस दिन जलियांवाला बाग में हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख, शिशु-वृद्ध-महिला, समाज के समुदाय और उम्र के लोग हाजिर थे । त्योहार मनाने वाली जनता और आम सभा में भाग लेने वाली जनता दोनों एकाकार हो गई थी। उस दिन बीस हजार से अधिक लोग आम सभा में उपस्थित थे, जिनमें से अधिकांश को प्रतिबंध के बारे में जानकारी नहीं थी। उस दिन प्रतिरोध सभा में कोई प्रसिद्ध नेता उपस्थित नहीं था। मंच पर केवल डा. किचलू का चित्र शोभायमान था ।

अपरान्ह 4 बजे जनरल डायर नब्बे रायफलधारी फौजियों को लेकर मार्च करते हुए जलियांवाला बाग की ओर बढ़ने लगा। दो हथियाबन्द गाड़ियां भी उसके साथ थी। बड़ी सड़क को छोडकर एक पगडंडी होकर वे बाग की ओर बढ़ने लगे । बाद में जब उन्हें पूछा गया कि ''आप क्यों तेजी से नहीं बढ़े''। उनका जवाब था, ''उस समय बहुत गर्मी पड़ रही थी''। शाम को 5 बजे के कुछ देर बाद वे जलियांवाला बाग पहुंचे। असल में जनरल डायर चाहता था कि बाग लोगों से पूरी तरह भर जाए। फौज के वहां पहुंचने से पहले एक हेलीकाप्टर बाग के ऊपर कुछ देर तक चक्कर लगाता रहा। फिर चला गया।

जनरल डायर बाग में पहुंचकर प्रवेश करने ऊंचे रास्ते पर खड़े हो गए । बाग के उत्तरी दिशा की ऊंची जमीन पर अपने दांयी ओर 25 और बांयी ओर 25 सैनिकों को तैनात कर दिया। घटना की जांच के लिए ब्रिटिश सरकार ने लार्ड हन्टर की अगुवाई में एक जांच आयोग बैठाया था । इस आयोग के समक्ष जनरल डायर ने जो बयान दिया उससे हम उनके मनोभाव को समझ सकते हैं ।

लार्ड हन्टर का सवाल था, ''आप जब बाग में पहुंचे तो आपने क्या किया''?

जनरल डायर का जवाब था, ''मैंने सीधे गोली चलाने का आदेश दिया'' ।

''तुरन्त''?

''हां, तुरन्त । मैंने पहले थोड़ा सोचा । लेकिन मुझे नहीं

लगता कि मैंने सोचने में अपना कर्तव्य तय करने में 30 सेकन्ड से अधिक का समय लिया'' ।

''क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि गोली चालन से पूर्व आपको जनता को उस स्थान से चले जाने के लिए चेतावनी देना था''?

''नहीं । मैंने जनता को ऐसा कुछ नहीं कहा। मैंने सिर्फ सोचा था कि इन्होंने मेरे आदेश को नहीं माना । इन्होंने सैनिक कानून का उल्लंघन किया है, इसलिए मेरा कर्तव्य है कि अभी इन पर रायफल से सारी गोलियां दाग दूं''।

''आपके गोली चालन का उद्देश्य क्या सिर्फ जनता को तितर–बितर करना था''?

''नहीं महाशय, मैंने सोचा था कि जब तक ये लोग एकदम से हट नहीं जाते तब तक गोलियां चलाई जाए'' ।

''जब आपने देखा कि जनता क्रमशः भीड़ में से निकलकर भागने लगी तब आपने गोली चलाना बन्द क्यों नहीं किया''?

''मैंने सोचा, जब तक सारे लोग बाग से हट न जाएं तब तक गोलियां चलाते रहूं । यदि मैं कम गोलियां चलाता तो भी गोली चालन को जो आरोप मेरे ऊपर है, वह तो लगता ही'' ।

असल में जनरल डायर बड़े पैमाने पर जनसंहार करना ही चाह रहा था । पहले गोलियां पैरों पर अधिक चल रही थी, जिसके फलस्वरूप लोग घायल ज्यादा हो रहे थे, मर कम रहे थे। जनरल डायर ने सैनिकों को डांटा, ''ये क्या हो रहा है? पैरों को निशाना बनाकर गोलियां क्यों चला रहे हो ? इससे तो सब घायल होंगे, मरेंगे कितने ? जहां भीड़ ज्यादा है, वहीं गोलियां चलाओं। जहां से लोग भागने की कोशिश कर रहे हैं वहां सही निशाने पर गोलियां चलाओ । जहां लोग जमीन पर लेटे हुए हैं, उन सबको गोलियों से भून डालो ।''

करीब दस मिनट तक गोलियां चली । कुल मिलाकर 1650 राउंड गोलियां चली। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 379 लोग मारे गए। करीब 1200 लोग घायल हुए। जालियांवाला बाग के अन्दर पर परित्यक्त कुंआ था। जान बचाने के लिए कई लोग उसमें कूद गए थे । अगले दिन उस कुंए से 10 12 शव निकाले गए। कुछ दिनों बाद जब संड़ान्ध फैलने लगी ओर लोग परेशान हो गए तब कुंए से करीब 100 शव ओर निकाले गए। कत्लेआम के बाद जलियांवाला बाग के चारों ओर रात के अंधेरे में सिर्फ हाहाकार, दर्द से कराहने की आवाज और कुत्तों का चिल्लाना सुनाई पड़ता रहा। एक बूंद पानी के लिए लोगों ने तड़पते हुए अपनी जान दी। कर्फ्यु के कारण घायलों को अस्पताल नहीं पहुंचाया जा सका। माताएं अपने घायल बच्चों को सीने से लगाए पूरी रात पानी के लिए रोती–बिलखती रहीं।

कत्लेआम के बाद

जनरल डायर के इस बर्बर हत्याकांड को अंग्रेज शासकों ने उल्लास के साथ समर्थन किया। विलायत के प्रशासनिक प्रमुखों से लेकर अंग्रेज पत्रकारों तक, सभी ने डायर के पक्ष में पैरवी करते हुए अखबरों में विज्ञप्ति दी। ब्रिटेन में लोगों ने चन्दे के जरिए 26000 पौण्ड जमा किया और उसकी माला बनाकर जनरल डायर को पहनाया गया। अंग्रेज ही क्यों, भारत में भी कुछ लोग और संगठन उस दिन जनरल डायर के पक्ष में खड़े हुए थे । कट्टर साम्प्रदायिक संगठन 'पंजाब हिन्दू महासभा' की भूमिका आज भी हमें शर्मिन्दा करती है । इस संगठन ने रौलेट एक्ट विरोधी सत्याग्रह आन्दोलन में भाग नहीं लिया । केवल यही नहीं, हिन्दू महासभा ने 1919 में पैदा होने वाली जन असंतोष की घोर निन्दा करते हुए ब्रिटिश राज के प्रति अपनी वफादारी प्रदर्शित की । **(द पंजाब हिन्दू सेवा एण्ड कम्युनल पॉलिसिज 1906–23, लेखक - के.एल. टुरेजा)**

केवल कुछेक अंग्रेज पादरी व महामति दीनबन्धु एंड्रूज ने इस हत्याकांड की निन्दा की। एंड्रूज को पंजाब में प्रवेश करने की अनुमति नहीं मिली। गांधीजी को भी पंजाब आने की अनुमति नहीं मिली। समूचा भारतवर्ष सहसा मूक हो गया। सारे भारत में लज्जा, अपमान, दुःख, पीड़ा, असहायता का अंधेरा छा गया। उस अंधेरे को चीरते हुए उजाला लेकर आगे आए कवि गुरू रविन्द्रनाथ ठाकुर।

जलियांवाला बाग और रविन्द्रनाथ ठाकुर

जलियांवाला बाग जनसंहार का समाचार प्रचारित न हो पाए, इस बारे में अंग्रेज सरकार बहुत सतर्क थी । लेकिन उसी के बीच दो चार समाचार लोगों तक पहुंच रहा था। जितना भी समाचार मिला, उससे रविन्द्रनाथ उत्तेजित हो उठे। उस समय समग्र भारत, भारत रक्षा कानून के अंतर्गत था। जलियावाला बाग जनसंहार पर कहीं कोई प्रतिक्रिया दिखाई नहीं पड़ रही थी। देश के नेतागण चुप थे। कलकत्ता में डाक्टर निलरतन सरकार, महाकवि की जांच कर पूर्ण विश्राम लेने को कह गए थे। प्रशान्तचन्द्र महलानविश ने अपनी स्मृतियों संजोते हुए लिखा है – ''कवि का शरीर इतना कमजोर हो गया है कि दूसरे माले से तीसरे माले में चढ़ने में बहुत तकलीफ होती है। पूरा दिन एक लम्बे सी कुर्सी में सोए रहते हैं। लिखना बन्द हो

गया था । बहुत कम बात करते थे । हंसी–ठठ्टा तो बिल्कुल नहीं । पंजाब की खबर पाकर ऐसी हालत में भी कवि अस्थिर हो उठे । एंड्रूज साहब को बुलवा भेजा। पंजाब में इतनी बड़ी घटना घटी है और पूरे भारत में एक भी व्यक्ति प्रतिवाद नहीं करेगा, ये बात कवि के लिए असहनीय थी। उन्होंने दीनबन्धु एंड्रूज को गांधी के पास एक संदेश देकर भेजा। उस समय बाहर से पंजाब में किसी के प्रवेश करने पर प्रतिबंध था। कवि की इच्छा थी कि यदि महात्मा गांधी राजी हों तो दिल्ली में आकर वे उनसे मिलेंगे। वहां से दोनों पंजाब में प्रवेश करने की कोशिश करेंगे। ऐसे करने पर इन दोनों की गिरफ्तारी ही इनका प्रतिरोध होगा। एंड्रूज, महात्मा गांधी से मिलकर रविन्द्रनाथ ठाकुर के घर आए और कहा कि गांधीजी अभी पंजाब जाने के लिए इच्छुक नहीं हैं क्योंकि वे अभी सरकार को परेशान करने के पक्ष में नहीं हैं। यह सुनकर कवि एकदम चुप हो गए। इस बारे में एक शब्द भी नहीं बोले ।

गांधीजी की ओर से आशानुरूप प्रतिक्रिया न पाकर, कवि एक प्रतिवाद सभा के आयोजन का प्रस्ताव लेकर कई लोगों के पास गए । लेकिन हर जगह से निराशा हाथ लगी। तब कवि समझ गए कि जो कुछ करना है उन्हें ही अकेले करना होगा । बाद में 'नाइटहुड' का खिताब लौटाने का कारण बताते हुए कवि ने लिखा है कि "मैं यह करने को मजबूर था क्योंकि जो पंजाब में घटा है उसका प्रतिवाद करने के लिए हमारे राजनैतिक नेताओं में मुझे निराश किया" (मार्डन रिव्यू, फरवरी 1926, पृष्ठ 158)। 1919 के 30 मई को 'सर' का खिताब लौटाने के लिए लार्ड चेम्सफोर्ड को कवि रविन्द्रनाथ ने पत्र लिखा। उस ऐतिहासिक पत्र की हर पंक्ति में इस राष्ट्रीय अपमान और पीड़ा की गहन अन्तर्वेदना उभरकर आती है। कितने मर्माहत होकर कवि ने 'नाइटहुड' त्यागने का निर्णय लिया था, यह उस पत्र को पड़कर हम आसानी से समझ सकते हैं ।

नाइटहुड त्यागने की प्रतिक्रिया

कवि के नाइटहुड खिताब त्यागने का समाचार प्रकाशित होते ही देश विदेश में प्रबल प्रतिक्रिया देखने को मिली। नेपाल मजूमदार ने लिखा है– "उस समय के घोर दुर्योग के अंधकार में देशवासियों के सारे अपमान की कालिमा को कवि ने पूरा अपने अकेले के ऊपर लगा लिया । रविन्द्रनाथ के इस प्रतिवाद पत्र ने उस समय तमाम देशवासियों के सीने में जो आशा–भरोसा और साहस का संचार किया, कितने विपुल स्वजात्यबोध और आवेग की सृष्टि की, उसे बोलकर अभिव्यक्त कर पाना सम्भव नहीं है । केवल इस एक प्रतिवाद के माध्यम से ऐसा लगा मानो भारतीय जनता ने विश्व के दरबार में अपने लिए न्याय और प्रतिकार की मांग की हो।" रविन्द्रनाथ द्वारा 'नाइटहुड' की उपाधि लौटाने की बात ने साहित्यकार शरतचन्द्र के अन्तर्मन को भी हिला दिया था। उन्होंने कहा कि देश की वेदना के बीच अकेले रविबाबू ही हमारी लाज रखे हैं। बंगाल के साहित्यकार रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी उस समय मृत्यु शैय्या पर थे। उन्होंने रविन्द्रनाथ से मिलने की अपनी अंतिम इच्छा जाहिर की। कवि उनसे मिलने गए । रामेन्द्र सुन्दर ने कहा कि आप भारतीय जनता के विवेक हैं और उनके पैरों की धूल को माथे से लगा लिया । चार दिन बाद उनकी मृत्यु हुई।

आश्चर्य की बात है कि देश के प्रसिद्ध नेतागण इस मसले पर चुप्पी साधे हुए थे। महात्मा गांधी ने 6 जून 1919 को श्रीनिवास शास्त्री को लिखे पत्र में कविगुरू को प्रोत्साहित करने के बजाय, हतोत्साहित किया। पत्र में उन्होंने लिखा कि "कवि की ओर से भेजा गया एक ज्वलंत पत्र पंजाब के आतंक को बढ़ा रहा है । मेरा व्यक्तिगत रूप से मानना है कि यह एक अपरिपक्क कदम है, लेकिन इसके लिए उन्हें दोषी नहीं ठहराया जा सकता ।" पंजाब में मार्शल लॉ और कत्लेआम के बाद लम्बे समय से अंग्रेजों द्वारा देशवासियों को "सीने के बल घिसट घिसटकर रास्ता पार करने" जैसे घृणित, अपमानजनक दण्ड दिया जा रहा था। मगर इसके खिलाफ राष्ट्रीय नेतृत्व द्वारा बिल्कुल भी विरोध नहीं किए जाने से कवि बहुत व्यथित थे । इसीलिए अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन में जब जलियांवाला बाग स्मृति स्तम्भ निर्माण का प्रस्ताव पारित हुआ तो कवि ने काफी दु:ख और क्षोभ से कहा कि "मैं, उत्पीड़न कितना भी कठिन हो, सहूंगा, लेकिन अपमान, अवमानना बिल्कुल नहीं सहूंगा – – पंजाब की ऐसा पौरूष वाणी सुनने की मेरी आशा थी। किन्तु जब नहीं सुना, तब सबसे पहले हमें खुद को ही धिक्कारना है" **(शांतिनिकेतन पत्रिका, 1930, वैशाख, प्रथम अंक, पृष्ठ 65–66)**। असल में पूरे देशवासियों समेत कवि को यह अपेक्षा थी कि अमृतसर में कांग्रेस के अधिवेशन में ब्रिटिश साम्राज्य की बर्बरता के खिलाफ तीव्र निन्दा सूचक प्रस्ताव पारित किया जाएगा । मगर ऐसा नहीं हुआ। रविन्द्रनाथ के गहरे दु:ख के बावजूद, कवि के नाइटहुड त्यागने और ब्रिटिश साम्राज्य को प्रतिवाद पत्र भेजने की घटना को तत्कालीन कांग्रेस नेतृत्व द्वारा तनिक भी सम्मान या स्वीकृति नहीं दी गई। अमल होम के बहुत प्रयास करने के बावजूद, इस महान काम के लिए

अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन से कविगुरू के नाम कोई धन्यवाद ज्ञापन तक नहीं दिया गया। लेकिन जहां चोट लगनी थी, वहां जरूर लगी। सात वर्ष पूर्व कवि जब इंग्लैण्ड गए तो वहां उनके व्यक्तित्व के आकर्षण से सुधी समाज के कई लोग उनके प्रशंसक बन गए थे। लेकिन नाइटहुड त्यागने के बाद उनमें से कई लोगों ने अपना मुंह फेर लिया। कवि ने इस बारे में मैत्रीय देवी को कहा था – ''इस बात से इंग्लैण्ड में मेरे मित्र काफी अपमानित महसूस कर रहे थे। मैंने इंग्लैण्ड में इस बार जाकर देखा कि वे मेरे नाइटहुड त्यागने की बात भुला नहीं पा रहे हैं। असल में, अंग्रेज राजभक्त हैं, इसीलिए उनके राजा द्वारा दिए गए सम्मान को जब मैंने लौटाया तो उन्हें बड़ी चोट पहुंची।''

एक दिन किशोर भगत सिंह ने जलियांवाला बाग में खून से सने मिट्टी को माथे पर लगाकर देश से ब्रिटिश साम्राज्य के खात्मे की शपथ ली थी । उधम सिंह ने उस घटना के 21 वर्ष बाद 14 मार्च 1940 को लंदन में इंडियन एशोसिएशन की एक सभा में पंजाब के भूतपूर्व गवर्नर सर माइकल–ओ–डायर और ओरों को गोली मारी। लंदन की अदालत में शहीद उधम सिंह ने कहा था – ''सर माइकल को यह सजा मिलनी ही थी। मुझे इसकी परवाह नहीं है कि मेरे साथ क्या होता है। मैं मरने से नहीं डरता। मैंने अपने देश के लिए मृत्यु को गले लगाया है।'' जलियांवाला बाग की घटना से जो समूचे भारत को भीषण दर्द व तकलीफ सहना पड़ा था, उधम सिंह के बलिदान ने उस जख्म पर कुछ मरहम लगाया था। जलियांवाला बाग के सामने बनाया गया शहीद स्तम्भ, बांग की दीवारों पर आज भी बने गोलियों के निशान, वह अंधा कुंआ सब, अंग्रेज सरकार की उस दिन की बर्बरता के गवाह हैं । जलियांवाला के उस बाग और संग्रहालय में जाने से इतिहास जीवन्त हो उठता है । 1936 में मुरिएल लिस्टर ने यहां आकर लिखा था – ''यहां एक घण्टा बिताना तपस्या करने की तरह है ।'' और एक अंग्रेज डोनल्ड डी कनिंधम ने 1938 में जलियांवाला देखने के बाद लिखा – ''मैं इस जगह को देखने के बाद मेरी कौम के लिए शर्म से मरा जा रहा हूं । मुझे ऐसा लगता है कि प्रत्येक भारतीय मेरी तरफ देखकर ऐसा सोचते हैं कि मैं भी जनसंहार करने वाली ब्रिटिश कौम का एक हूं । मैं सिर्फ आशा करूंगा की यह महान बलिदान साम्राज्यवाद के घृणित व्यवस्था को खत्म करे।''

साम्राज्यवाद की घृणित व्यवस्था का आज तक खात्मा नहीं हुआ। आज शायद उसका रूप बदला हो, लेकिन उसकी मानवता विरोधी लूट और नफरत आज भी विश्वव्यापी है। भारत में आकर अमृतसर में जाकर भी ब्रिटेन के प्रधानमंत्री या वहां के राजा–रानी ने लिस्टर और कनिंधम की तरह भारत की जनता से आज तक क्षमायाचना नहीं किया है। न ही भारत का दलाल शासक वर्ग ने आज तक ब्रिटिश सरकार से जलियांवाला बाग के जुल्मों के लिए क्षमायाचना की मांग की है। आज ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जगह ले ली है दुनिया की जनता का एक नम्बर दुश्मन अमेरिकी साम्राज्यवाद ने। उसकी अगुवाई में साम्राज्यवादी ताकतें दुनिया भर में साम्राज्यी लूट के लिए जंग और जनसंहार किए जा रहे हैं। जब तक साम्राज्यवाद मौजूद है, स्थाई शान्ति दूर की कौड़ी है।

संदर्भ :

1. स्वाधीनता संग्राम – विपनचन्द्र, अमलेश त्रिपाठी, वरूण दे
2. जलियांवाला बाग: 13 अप्रेल 1919, प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
3. भारते जातीयता ओ अन्तरजातीयता एवं रविन्द्रनाथ (द्वितीय खण्ड), नेपाल मजूमदार (बांग्ला)
4. भारत के मुक्ति संग्राम में मुस्लिम समुदाय का योगदान, शांतिमय राय
5. जलियांवाला बाग –निर्मलचन्द्र गांगुली (बांग्ला में)

पृष्ठ 40 का शेष

आयोजित नहीं होने दिया। फिर हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय में इसके आयोजन का प्रयास किया गया। विवि सहमत हो गया। विवि ने सीनेट हाल में एक संगोष्ठी के आयोजन की भी सहमति जताई। वहां भी दबाव डाला गया। विवि ने अनुमति वापस ले ली। इसके बाद शहर के रामलीला मैदान में लिखित अनुमति रामलीला कमेटी ने दे दी। उसके बाद उसी दिन उसी समय संघ ने अपना आयोजन रख दिया। संघ से जब पंगा विवि नहीं ले सकता, सरकारी गर्ल्स इंटर कालेज नहीं ले सकता तो रामलीला कमेटी कैसे ले सकती थी ?

किताबें जलाने की धमकी के बाद किताब कौतुक के आयोजक भी अब पीछे हट गए हैं। अब उत्तराखंड के पुस्तक प्रेमियों को पता नहीं कब ऐसा अवसर मिले कि किताबें उनके दरवाजे आ सकें। गनीमत है कि दिल्ली, लखनऊ,पटना, कोलकाता आदि में अभी ऐसे हालात नहीं हुए हैं मगर खतरे की घंटी समझिए कि वहां के लिए भी बज चुकी है।

–विष्णु नागर

विज्ञान के बगैर बेहतह संस्कृति आगे नहीं बढ़ सकती

हरियाणा ज्ञान-विज्ञान समिति तथा हरियाणा विज्ञान मंच द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित वैज्ञानिक मानसिकता के प्रथम चरण (7 नवंबर से 28 फरवरी) के समाप्ति तथा दूसरे चरण (28 फरवरी से 7 नवंबर 2026) के आगाज़ का कार्यक्रम मोतीलाल नेहरू पब्लिक स्कूल जींद में किया गया जिसमें 12 ज़िलों के सैंकड़ों अध्यापकों, विद्यार्थियों तथा दोनों संस्थाओं के अलावा हरियाणा विद्यालय अध्यापक संघ तथा तर्कशील सोसायटी के कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। कार्यक्रम का मंच संचालन विज्ञान कौर ग्रुप के संयोजक सेवानिवृत्ति प्राचार्य वेद प्रिय ने किया। उन्होंने आए हुए सभी प्रतिनिधियों का स्वागत किया तथा साथ ही कार्यक्रम का परिचय दिया। कार्यक्रम का आरंभ सांस्कृतिक कार्यक्रम में जन गीतों द्वारा किया गया। अध्यक्ष मंडल में डाक्टर आर.एस. दहिया, डॉ. प्रमोद गोरी, प्रोफेसर सुरेंद्र कुमार, सुरेश कुमार, सोहन दास और सतबीर नागल शामिल रहे। समिति के सचिवमंडल तथा कार्यकरणी सदस्य सोहन दास ने हरियाणा ज्ञान विज्ञान समिति के कार्यों का परिचय दिया तथा हरियाणा विज्ञान मंच के कार्य का परिचय सचिव सतबीर ने दिया। कार्यक्रम में मुख्य वक्तव्य समिति के राज्यध्यक्ष प्रमोग गोरी ने रखा। उन्होंने कहा कि विज्ञान के बगैर संस्कृति आगे नहीं बढ़ सकती। विज्ञान वरदान और अभिशाप दोनों सिद्ध हो सकता है, अगर उसमें विवेक का प्रयोग ना किया जाए। विवेक के प्रयोग से ही विज्ञान का सदुपयोग हो सकता है। उन्होंने रूस-यूक्रेन, इसराइल और फिलिस्तीन युद्ध का उदाहरण देते हुए कहा कि विज्ञान किस प्रकार बिना विवेक के मनुष्य के लिए विनाशकारी सिद्ध हो सकता है। उन्होंने महान वैज्ञानिक आइस्टीन, जे.डी. बर्नर, बर्टेंड रसेल, जवाहर लाल नेहरू का उदाहरण देते हुए कहा कि वैज्ञानिक मानसिकता के द्वारा ही समाजिक और आर्थिक समस्या का हल हो सकता है और मानवता का विकास हो सकता है। कार्यक्रम में बहुत से विद्यार्थियों और अध्यापकों ने भी टिप्पणियां रखी जिसमें रोहतक, पानीपत नरवाना, करनाल, गुड़गांव, हिसार से टिप्पणियां रखी गई। प्रोफेसर सुरेन्द्र कुमार ने टिप्पणी करते हुए कहा कि परंपराओं और संस्कृति को जानना बुरा नहीं है परन्तु उनके आधार पर अंधविश्वास बनाए रखना गलत है। कार्यक्रम के दूसरे चरण का आगाज करते हुए हरियाणा ज्ञान विज्ञान समिति के राज्य महा सचिव सुरेश कुमार ने बताया कि वैज्ञानिक मानसिकता पर रोहतक गुड़गांव और भिवानी में कार्यशालाएं हो चुकी है, दो कार्यशालाएं ओर पूरे हरियाणा को कवर करते हुए की जाएगी। दूसरे चरण में चमत्कारों का पर्दाफाश कार्यक्रम कम खर्च पर विज्ञान के प्रयोग विज्ञान प्रदर्शनियों तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम किए जाएंगे। कार्यक्रम के अंत में निबंध प्रतियोगिता में उत्कृष्ट रहे विद्यार्थियों और अध्यापकों को सम्मानित किया गया तथा निबंध प्रतियोगिता में शामिल रहे सभी विद्यार्थियों और अध्यापिकों को पुरस्कृत किया गया। कार्यक्रम के समापन संबोधन में अध्यक्ष मंडल टिप्पणी करते हुए डॉक्टर आर. एस. दहिया ने कहा कि आर्टिफिशियन इंटेलिजेंस से सावधान रहते हुए रहते हुए इंटरनेट से नकल करके हमें कॉपी पेस्ट से बचना चाहिए। ज्ञान विज्ञान आंदोलन के कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए कहा कि वैज्ञानिक मानसिकता पहले अपने अंदर विकसित करनी चाहिए। उसके बाद समाजिक आंदोलन चलाना चाहिए।

-नन्दकिशोर

(हरियाणा ज्ञान विज्ञान समिति)

मुक्ति

हरेक आवाज
हरेक गीत को
उठाओ
उतना ऊँचा
मुक्ति की ताल पर
थिरक उठो
गूँजने दो
समुद्र की हुंकार

-वेल्डन जॉनसन

अंधविश्वास के खिलाफ जंग की कहानियां

तर्कशील प्रकाशन बरनाला, पंजाब द्वारा फरवरी 2025 में मास्टर बलवन्त सिंह की पुस्तक 'अंधविश्वासों का मनोविज्ञान' प्रकाशित की गई है पेपर बैक में छपी118 पृष्ठ की इस किताब में 27 लेख है जो सच्ची घटनाओं पर आधारित है। कीमत केवल 120 रुपये रखी गई है ताकि हर पाठक इसे खरीद सके ।पुस्तक की शुरुआत में ही मास्टर बलवन्त सिंह के संघर्षमय जीवन का परिचय दिया गया है। जिला कुरुक्षेत्र के एक छोटे से गांव संधौली में जन्मे मास्टर बलवन्त सिंह तर्कशील संगठन को स्थापित करने वाले संस्थापक सदस्यों में से एक थे। उन्होंने जहाँ तर्कज्योति एवं तर्कशील पथ पत्रिका का संपादन किया,वहीं तर्कशील आंदोलन को विस्तार देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।वे अपने कृषि फ़ार्म पर मानसिक व्याधियों से ग्रस्त पीड़ितों का नि:शुल्क मार्गदर्शन करते थे। भूत, प्रेत, ओपरी पराई आदि समस्यायों का समाधान करने में उन्हें महारत हासिल थी। वे मानसिक व्याधियों से पीड़ित लोगों के घर जाकर भी मार्गदर्शन करते रहे। उन्होंने हजारों मानसिक व्याधियों से पीड़ित लोगों को नया जीवन प्रदान किया ।जिस के लिए वे जीवन पर्यन्त लगे रहे।इस पुस्तक में उनके द्वारा सुलझाए गए ऐसे ही केस संकलित किए गए हैं। इन केसों में संबंधित लोगों , परिजनों एवं स्थानों के नाम बदल दिए हैं,ताकि निजता बनी रहे एवं उन्हें किसी प्रकार की सामाजिक प्रताड़नाओं का सामना न करना पड़े।

डायन, धार्मिक मेले में जाने का प्रतिफल, नर्स बनने की दास्तान, अनैतिक हाल में देखकर,वह स्कूल जाने लग गई आदि लेखों के शीर्षक देखकर इस पुस्तक के विषयों का अंदाजा लगाया जा सकता है ।पढकर जहां पाठक अपनी समस्याएं हल कर सकते है,वहीं वे अपने आस पास की इस तरह की समस्याओं को सुलझाने में दूसरों का सहयोग भी कर सकते हैं ,उनका सही ढंग से मार्गदर्शन कर सकते हैं।इस पुस्तक में कथित भूत- प्रेत चुडैल, आग-लगना, पत्थरों- ईंटों- कंचों का बरसना, कपड़े कटना,कुछ आकृतियों का दिखाई देना या कुछ अनजानी आवाजों का सुनाई देना जैसी मानसिक व्याधियों से पीड़ित लोगों की दुख भरी सच्ची कहानियां हैं जो जानकारियों के ही साथ प्रेरक भी हैं।किसी भी प्रकार की मानसिक व्याधियों को हमारे समाज में तांत्रिकों,बाबाओं , ज्योतिषियों, मौलवियों, ओझाओं सायनो,मुनियों, चंगाई सभा करने वालों आदि से ठीक करवाने के प्रपंच किए जाते हैं ,जिससे केस और बिगड़ जाते हैं ।ऐसे केसों को वैज्ञानिक तरीके से ठीक किया जा सकता है। यह ही इस पुस्तक की प्रमुख विशेषता है जिसमें पीड़ितों को परामर्श देकर ,हमदर्दी दिखा सही मार्ग दर्शन दिया गया है।इससे जहां रोगियों का खर्च नाम मात्र ही आता है ।वहां उनकी समस्याओं का समाधान भी सही ढंग से हो जाता है। इन लेखों की भाषा बहुत सरल और रोचक है जिसे कम पढ़ा लिखा व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है ।विद्यार्थी से लेकर अध्यापक तक सब इसका लाभ उठा सकते हैं । डॉक्टर अब्राहम थॉमस कोवूर की पुस्तक '...और देव पुरुष हार गए तथा 'देव और दानव' की तरह यह पुस्तक भी लोकप्रिय होगी ।हर पाठक को ये पुस्तक निश्चित ही पढ़नी चाहिये ताकि वे इस तरह की समस्याओं को अपने जीवन में वैज्ञानिक तरीके से हल कर सकें और सुखी जीवन जी सके और दूसरों को भी ऐसा जीवन जीने की प्रेरणा दे सकें ।

तर्कशील सोसाइटी पंजाब को इस महत्वपूर्ण और उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करने के लिए बहुत-बहुत बधाई !!

अंधविश्वासों का मनोविज्ञान
लेखक प्रा.बलवंत सिंह
संस्करण-प्रथम /2025
प्रकाशक- तर्कशील प्रकाशन बरनाला(पंजाब)
कीमत-120/- पेपर-बैक
संपर्क मो.9872874620
समीक्षा -जयपाल
मो.+91 94666 10508

कुरुक्षेत्र में मास्टर बलवंत सिंह के प्रथम स्मृति दिवस को समर्पित सेमिनार में उनकी किताब अंधविश्वासों का मनोविज्ञान का विमोचन करते हुए परिवारिक सदस्य एवं तर्कशील सोसायटी हरियाणा की कार्यकारिणी

तर्कशील भवन बरनाला (पंजाब) में कृष्ण बरगाड़ी स्मृति समारोह में अमोलक सिंह को सम्मानित करते हुए तर्कशील सोसायटी पंजाब की कार्यकारिणी

कृष्ण बरगाड़ी स्मृति समारोह में पंजाब राज्य के विभिन्न जिलों से आए तर्कशील कार्यकर्ता

If undelivered please return to :

Tarksheel

Tarksheel Bhawan, Tarksheel Chowk, Sanghera By Pass, BARNALA-148101
Post Box No. 55
Cell. 98769 53561, 98728 74620
Web : www.tarksheel.org
e-mail : tarkshiloffice@gmail.com

BOOK POST
(Printed Matter)

To ....

....

....